धर्म शिक्षावली

चौथा भाग

तातैं अब ऐसी करहु नाथ,
बिछुरै न कभी तुम चरण साथ।
तुम गुणगण को नहीं छेव देव,
जगतारण को तुम विरद एव ॥१३॥
आतम के अहित विषय कषाय,
इनमें मेरी परणति न जाय।
मैं रहौं आप में आप लीन,
सो करो होहुँ ज्यों निजाधीन ॥१
मेरे न चाह कछु और ईश,
रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश
मुझ कारज के कारण सु आप,
शिव करहु हरहु मम मोह ताप ॥१
शशि शान्ति करन तप हरन हेत,
स्वयमेव तथा तुम कुशल दे
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय,
त्यों तुम अनुभव तैं भव नशाय ॥१
त्रिभुवन तिहुं काल मँझार कोय,
नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय
मो उर यह निश्चय भयो आज,
भव जलधि उतारन तुम जहाज ॥१८

के क्षत्रियों की राजकुमारी थी। राजा दुष्ट था, इसलिए चन्द्रगुप्त की माता पटना चली गई। यहां उसने वीर पुत्र को जन्म दिया और उसका पालन पोषण किया। राजकुमार चन्द्रगुप्त बड़े पराक्रमी और बुद्धिमान थे। वह शास्त्र और शस्त्र विद्या में निपुण हो गये। चाणक्य नाम के एक ब्राह्मण ने चन्द्रगुप्त को पढ़ाकर प्रवीण किया

उस समय मगध में महा पद्मनन्द का राज्य था जिससे चाणक्य को सन्तोष न था। वह राजा को हटा कर चन्द्रगुप्त को राजगद्दी पर बिठाना चाहता था उन दिनों भारत पर यूनान के सम्राट् सिकन्दर मह का आक्रमण हो रहा था और उसने उत्तर-पश्चि सीमाप्रान्त एवं पंजाब पर अपना अधिकार जमा लि था। चन्द्रगुप्त ने यूनानियों की वीरता की प्रशंसा सु थी। चाणक्य की सम्मति से वह सिकन्दर महान् सेना में बेधड़क चला आया और उन विदेशियों की से में भरती हो गया।

चन्द्रगुप्त को यूनानी सेना में रहते अभी बहु समय नहीं बीता था कि उसका क्षत्रिय तेज भड़ उठा। भारतीय क्षत्रियों का लहू उसकी नसों खौल रहा था। वह स्वाभिमान खोकर अपना जीव

मलीन नहीं करना चाहता था। एक दिन बातों ही बातों में सिकन्दर से उसकी बिगड़ गई। सिकन्दर का साथ छोड़ कर वह कहीं चल दिया। अब चन्द्रगुप्त के भाग्य का सितारा चमका, चाणक्य के सहयोग से उसने नन्द राजा को हरा दिया। चन्द्रगुप्त मगध का अधिपति हो गया, और उसने अपना राज्य सारे भारत में फैला दिया। राजा नन्द की पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त से हुआ।

चन्द्रगुप्त ने यूनानी राजा सैल्युकस को भी बड़ी वीरता से हराया। सैल्युकस ने अपनी पुत्री चन्द्रगुप्त को विवाह दी व काबुल, कन्धार व ईरान के प्रदेश भी भेंट किये। चन्द्रगुप्त ने भारत के बाहर के राजाओं को भी अपने प्रभाव से वश में कर लिया। प्रजा उसके राज्य में राम-राज्य के सुख भोगने लगी। धर्म और सत्य की बढ़वारी हुई।

चन्द्रगुप्त जैन धर्म का दृढ़ श्रद्धानी था। सदैव गृहस्थ का धर्म पालता था। उसने पशुओं की रक्षा के लिए भी अस्पताल खुलवाये थे। वह बड़ा दानी तथा जीव-दया प्रचारक था। एक बार चन्द्रगुप्त ने जैन गुरु श्री भद्रबाहु स्वामी का आदेश सुना। उसे वैराग्य हो गया और अपने पुत्र बिन्दुसार को राज्य देकर वह साधु हो गया।

के क्षत्रियों की राजकुमारी थी। राजा दुष्ट था, इसलि चन्द्रगुप्त की माता पटना चली गई। यहां उसने वी पुत्र को जन्म दिया और उसका पालन पोषण किया राजकुमार चन्द्रगुप्त बड़े पराक्रमी और बुद्धिमान थे वह शास्त्र और शस्त्र विद्या में निपुण हो गये। चाणक्य नाम के एक ब्राह्मण ने चन्द्रगुप्त को पढ़ाकर प्रवीण किया

उस समय मगध में महा पद्मनन्द का राज्य था जिससे चाणक्य को सन्तोष न था। वह राजा को हट कर चन्द्रगुप्त को राजगद्दी पर बिठाना चाहता था उन दिनों भारत पर यूनान के सम्राट् सिकन्दर महा का आक्रमण हो रहा था और उसने उत्तर-पश्चि सीमाप्रान्त एवं पंजाब पर अपना अधिकार जमा लिय था। चन्द्रगुप्त ने यूनानियों की वीरता की प्रशंसा सुन थी। चाणक्य की सम्मति से वह सिकन्दर महान् क सेना में बेधड़क चला आया और उन विदेशियों की सेन में भरती हो गया।

चन्द्रगुप्त को यूनानी सेना में रहते अभी ब समय नहीं बीता था कि उसका क्षत्रिय तेज भ उठा। भारतीय क्षत्रियों का लहू उसकी नसों खौल रहा था। वह स्वाभिमान खोकर अपना जी

मलीन नहीं करना चाहता था। एक दिन बातों ही बातों में सिकन्दर से उसकी बिगड़ गई। सिकन्दर का साथ छोड़ कर वह कहीं चल दिया। अब चन्द्रगुप्त के भाग्य का सितारा चमका, चाणक्य के सहयोग से उसने नन्द राजा को हरा दिया। चन्द्रगुप्त मगध का अधिपति हो गया, और उसने अपना राज्य सारे भारत में फैला दिया। राजा नन्द की पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त से हुआ।

चन्द्रगुप्त ने यूनानी राजा सैल्युकस को भी बड़ी वीरता से हराया। सैल्युकस ने अपनी पुत्री चन्द्रगुप्त को विवाह दी व काबुल, कन्धार व ईरान के प्रदेश भी भेंट किये। चन्द्रगुप्त ने भारत के बाहर के राजाओं को भी अपने प्रभाव से वश में कर लिया। प्रजा उसके राज्य में राम-राज्य के सुख भोगने लगी। धर्म और सत्य की बढ़वारी हुई।

चन्द्रगुप्त जैन धर्म का दृढ़ श्रद्धानी था। सदैव गृहस्थ का धर्म पालता था। उसने पशुओं की रक्षा के लिए भी अस्पताल खुलवाये थे। वह बड़ा दानी तथा जीव-दया प्रचारक था। एक बार चन्द्रगुप्त ने जैन गुरु श्री भद्रबाहु स्वामी का आदेश सुना। उसे वैराग्य हो गया और अपने पुत्र बिन्दुसार को राज्य देकर वह साधु हो गया।

(१) मद्य-त्याग—शराब वगैरह नशीली चीजों के सेवन का त्याग मद्य त्याग है। शराब अनेक पदार्थों के सड़ाने से पैदा होती है। सड़ाने से उसमें अनेक कीड़े पैदा होते और मरते रहते हैं। जीव-हिंसा के बिना शराब किसी प्रकार तैयार नहीं हो सकती। इस लिए शराब पीने से जीव हिंसा का पाप लगता है। शराब पीने से मनुष्य पागल-सा हो जाता है। उसे बुरे-भले का ज्ञान नहीं रहता। शराबी के मुख में कुत्ते पेशाब कर जाते हैं। इसी प्रकार शराबी की और भी दुर्गति होती है। इस लिये शराब नहीं पीना चाहिये। तथा भंग, गांजा, अफ़ीम, कोकीन, चरस, तम्बाकू, बीड़ी, चुरगट आदि और भी नशीली चीजों का सेवन कदापि नहीं करना चाहिये।

(२) माँस-त्याग—मांस खाने का त्याग करना मांस-त्याग कहलाता है। मांस त्रस जीवों के घात से उत्पन्न होता है। उसमें अनेक जीव पैदा होते और मरते रहते हैं। मांस के छूने मात्र से ही जीव मर जाते हैं। इस लिये जो माँस खाता है वह बड़ी हिंसा करता है। मांस खाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। मांस खाने वालों के परिणाम क्रूर हो

जाते हैं। मांस खाने से शरीर पुष्ट नहीं होता। इस लिए भी सभी स्त्री-पुरुषों को मांस छोड़ना ही उचित है।

(३) मधु-त्याग—शहद खाने का त्याग मधु-त्याग है। शहद मक्खियों का उगाल (वमन) होता है। मधु में हर समय सूक्ष्म-त्रस जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। मधु मक्खियों के छत्ते को निचोड़ कर निकाला जाता है। छत्ते में छोटी मक्खियाँ रहती हैं। छत्ते को निचोड़ते समय वे सब मर जाती हैं, और शहद में उन सबका निचोड़ आ जाता है इसलिए ऐसी अपवित्र हिंसा की खान, घृणा करने वाली चीज का त्याग करना ही उचित है।

(४) अहिंसा अणुव्रत—जान-बूझ कर इरादा करके जन्तुओं की हत्या करने से बचना अहिंसा अणुव्रत है। किसी भी मानव को धर्म के नाम से पशुओं की बलि न करना चाहिए। न शिकार के लिए मारना चाहिए। न ऐसा शौक चमड़े, रेशम व हिंसाकारी वस्तुओं के व्यवहार का करना चाहिए जिससे जन्तुओं का अधिक घात हो। खेती, व्यापार, शिल्प, राज्य प्रबन्ध सम्बन्धी हिंसा ग्रहस्थी से छूट नहीं सकती। इसे आरम्भी हिंसा

कहते हैं जीव दया के लिए पानी छान कर पीना चाहिये। दोहरे मोटे साफ कपड़े से छान कर पीना चाहिये। बिना छाना पानी पीने से बहुत त्रस जीवों की हिंसा होती है। जीव दया के लिए रात्रि को भोजन न करने का भी जहाँ तक हो सके अभ्यास करना चाहिए। रात्रि को मच्छर अधिक उड़ते हैं। सूर्य के प्रकाश में भोजन करने से भोजन पाचक भी होता है।

(५) सत्य अणुव्रत—पीड़ाकारी वचन कभी नहीं कहने चाहिए झूठ बोलने से दूसरों को कष्ट पहुँचता है। झूठ बोल कर अपना मतलब निकालना धनादि कमाना पाप है। असत्य हिंसा का ही अंग है।

(६) अचौर्य अणुव्रत—बिना दी हुई वस्तु रागवश उठा लेना चोरी है। मनुष्य को सत्य व्यवहार करना चाहिए। चोरी करने से दूसरे के प्राणों को कष्ट पहुंचता है। यह भी हिंसा का भेद है।

(७) ब्रह्मचर्य अणुव्रत— ब्रह्मचर्य बड़ा गुण है। जब तक विवाह न हो पूर्ण ब्रह्मचर्य पालना उचित है। विवाह होने पर अपनी पत्नी से सन्तोष रखना उचित है। पर स्त्री का त्याग होना चाहिये।

(८) परिग्रह परिमाण—गृहस्थ को जितनी इच्छा व जरूरत हो उतनी सम्पत्ति का परिमाण कर लेना चाहिए। जब उतना धन हो जावे तब सन्तोष से अपना जीवन धर्मध्यान व परोपकार में बिताना चाहिये ।

नोट—किन्हीं आचार्यों ने मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर के त्याग को ही अष्टमूल गुण कहा है ।

पांच उदम्बर यह हैः—(१) बड़फल (२) पीपलफल (३) पाकर (पिलखन) (४) गूलर (५) कठूमर (अंजीर) इनमें त्रस जीव पाये जाते हैं। इनमें से कभी किसी फल में साफ़ दिखाई नहीं पड़ते हैं, तो भी उनके पैदा होने की सामग्री है। इस कारण जीव दया के लिए उनका त्याग ही उचित है ।

मद्य, मांस, मधु इन तीनों को मकार कहते हैं, क्योंकि इन तीनों का पहला अक्षर 'म' है ।

प्रश्नावली

१—मूलगुण किसे कहते हैं ? और इनका पालन कौन करता है ? यह भी बताओ कि इन गुणों का नाम "मूलगुण" क्यों पड़ा ?

२—मूलगुण कितने होते हैं ? नाम बताओ ।

३—मद्य, मांस व मधु सेवन में क्या बुराई है ? अहिंसाणुव्रत का धारी इन वस्तुओं का सेवन करेगा या नहीं ?

४—अहिंसाणुव्रत से क्या अभिप्राय है? खेती व्यापार आदि करने में हिंसा होती है या नहीं? तुम्हारी समझ में खेती व्यापार करने वाला गृहस्थी अहिंसाणुव्रत धारण कर सकता है या नहीं?

५.—क्या मूलगुण को अन्यरूप से बतलाया गया है? यदि बतलाया है तो इसका क्या कारण है?

पाठ ४

अभक्ष्य

[१] जिन पदार्थों के खाने से त्रस जीवों का घात होता हो जैसे बड़, पीपल आदि पाँच उदम्बर फल। भिस (कमल डंडी) बीधा अन्न, गले सड़े फल जिनमें त्रस जीव पैदा हो जावें तथा मांस, मधु, द्विदल और चलित रस।

नोट—द्विदल कच्चे दूध, कच्चे दही और कच्चे दूध की जमी हुई वस्तुएँ उड़द, मूँग, चना आदि द्विदल वस्तु (जिसके दो टुकड़े बराबर २ हो जाते हैं) को मिला कर खाना।

चलित रस—वह पदार्थ जिनका स्वाद बिगड़ गया हो, जो मर्यादा से रहित हो गये हों, जैसे बदबूदार घी, गुरसली वाला आटा तथा बहुत दिनों की बनी हुई मिठाई मुरब्बा, आचार आदि।

[२] जिन पदार्थों को खाने से अनन्त स्थावर जीवों का घात होता हो जैसे—आलू, अरवी, मूली, गाजर, लहसन, अदरक, प्याज, शकरकन्द, कचालू, तुच्छ फल (जिसमें बीज न पड़े हों व जो बहुत छोटे हों और बड़े हो सकते हों।)

[३] जो पदार्थ प्रमाद तथा काम विकार के बढ़ाने वाले हों जैसे—शराब, कोकीन भंग, चरस, तम्बाकू आदि नशीली चीजें, माजून आदि।

[४] अनिष्ट—पदार्थ अर्थात् ऐसे पदार्थ जो खाने योग्य तो हों, परन्तु शरीर को हानि पहुँचावें, जैसे खांसी दमा रोग वाले को मिठाई खाना, बुखार वाले को घी खाना, अधपका कच्चा देर से पचने वाला, अपनी प्रकृति विरुद्ध भोजन।

[५] अनुपसेव्य—पदार्थ जिनको अपने देश समाज तथा धर्म वाले लोग बुरा समझें।

इसके सिवाय मक्खन, चमड़े के कुप्पे व तराजू आदि में रखे हुए तथा छुवे हुए घी, हींग, सिरका आदि पदार्थ भी अभक्ष हैं।

आप के बताए हित मग पर पग रख,
जगत के जीवन ने लाभ अति पायो है।
धन धन वीर महावीर जिनराज आज,
मम अहोभाग्य तुम दरश दिखायो है।

[२]

दिया उपदेश दया धरम का हितकर,
हिंसा में पाप महापाप बतलायो है।
तज के कषाय अर विषयों की वासना को,
आतम कल्याण करो मग यह सुझायो है॥
पर से ममत छोड़ निज से स्नेह जोड़,
आतम में लीन निजाधीन पद पायो है॥
धन धन ऐसे महावीर जिनराज आज,
मम अहोभाग्य तुम दरश दिखायो है॥

(ज्योतिप्रसाद)

प्रश्नावली

१—इस कविता के रचयिता कौन हैं, उनके सम्बन्ध में तुम क्या जानते हो?

२—भगवान महावीर का उपदेश संक्षेप में अपने शब्दों में वर्णन करो।

३—आत्महित का मार्ग क्या है?

४—वीतराग शान्त छवि से क्या समझते हो?

परीक्षा के समय बीमार हो जाता है, परीक्षा देने नहीं पाता। दूसरा परीक्षा देकर पास हो जाता है यह सब कर्म का महात्म्य है। पहिले विद्यार्थी ने क्या कुछ कम परिश्रम किया था।

यह भी ध्यान रहे कि यदि अकेले 'कर्म' के भरोसे निठल्ले बैठे रहोगे और हाथ पैर न हिलाओगे तो सफलता नहीं मिलेगी। सफलता तो प्रयत्न से मिलती है, किन्तु उसके लिए कर्म की अनुकूलता होनी चाहिये। कर्म-कर्म कहते सभी हैं, परन्तु कर्म के मर्म को कोई नहीं जानते। आओ तुम्हें संक्षेप में इस पाठ में कर्म का कुछ रहस्य समझावें।

कर्म—उन पुद्गल परमाणुओं को कहते हैं जो आत्मा का असली स्वभाव प्रकट नहीं होने देते। जैसे बादल सूर्य के सामने आकर उसके प्रकाश को ढक देते हैं उसी प्रकार बहुत से पुद्गल परमाणु (छोटे २ टुकड़े) जो इस लोक में सब जगह भरे हुए हैं, आत्मा में क्रोधादि कषायों के पैदा होने से खिच कर आत्मा के प्रदेशों से मिल कर आत्मा के स्वभाव को ढक देते हैं। कषायों के सम्बन्ध से उन पुद्गल परमाणुओं में दुःख देने की शक्ति भी हो जाती है। इन्हीं पुद्गल परमाणुओं को कर्म कहते हैं।

कर्म आठ हैं (१) ज्ञानावरण (२) दर्शनावरण (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र और (८) अन्तराय ।

१–ज्ञानावरण–कर्म उसे कहते हैं जो आत्मा के ज्ञानगुण को प्रकट न होने दे। जैसे एक प्रतिमा पर पर्दा डाल दिया जावे, तो वह प्रतिमा को ढके रहता है। उसे प्रगट नहीं होने देता। इसी प्रकार ज्ञानावरणी कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को ढके रहता है प्रगट नहीं होने देता। जैसे मोहन अपना पाठ खूब परिश्रम से याद करता है, परन्तु उसे याद नहीं होता इससे मोहन के ज्ञानावरण कर्म का उदय समझना चाहिये। ईर्षा से सच्चे उपदेश की प्रशंसा न करना, अपने ज्ञान को छुपाना अर्थात् दूसरों के पूछने पर न बताना। दूसरों को इस भाव से कि पढ़ कर मेरे बराबर हो जायेगा, नहीं पढ़ाना। दूसरों के पढ़ने में विघ्न डालना, उनकी पुस्तकें छुपा देना, बिगाड़ देना, दूसरों को सत्य उपदेश देने तथा सुनने से रोकना। सच्चे उपदेश को दोष लगाना, गुरु और विद्वानों की निन्दा करना, पढ़ने में आलस्य करना। इत्यादि कार्यों से ज्ञाननावरण कर्म बंधता है। जितना २ ज्ञानावरण

२—दर्शनावरण कर्म—उसे कहते हैं जो आत्मा के दर्शन गुण को प्रगट न होने दे जैसे एक राजा का दरबान पहरे पर बैठा हुआ है वह किसी को भी अन्दर जाकर राजा के दर्शन नहीं करने देता सबको बाहर से ही रोक देता है। जैसे सोहन मन्दिर में दर्शन करने के लिए गया परन्तु मन्दिर का ताला लगा पाया इससे समझना चाहिये कि सोहन के दर्शनावरण कर्म का उदय है।

३—वेदनीय कर्म—उसे कहते है जो आत्मा के लिए सुख दुःख की सामग्री का संबन्ध मिलावे। इस कर्म के उदय से संसारी जीवों को ऐसी चीजों का मिलाप होता है जिनके कारण वह सुख दुःख महसूस करते हैं। जैसे शहद लपेटी तलवार की धार चाटने से सुख दुःख दोनों होते हैं अर्थात् शहद मीठा लगता है इससे तो सुख होता है परन्तु तलवार की धार से जीभ कट जाती है इससे दुःख होता है। इस प्रकार वेदनीय कर्म सुख और दुःख दोनों देता है। जैसे प्रकाशचंद ने लड्डू खाया अच्छा लगा और पैर में काँटा गड़ गया दुःख हुआ। दोनों ही हालतों में वेदनीय कर्म का उदय समझना चाहिये।

वेदनीय कर्म के दो भेद हैं:—[१] सातावेदनीय

(२) असाता वेदनीय।

साता वेदनीय कर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से दुख देने, वाली वस्तुएं मिलें।

असाता वेदनीय कर्म—उसे कहते हैं जिसके उदय से दुख देने वाली वस्तुएँ मिलें।

सब जीवों पर दया करना, चार प्रकार का दान देना पूजन करना, व्रत पालन करना, क्षमा धारण करना, लोभ नहीं करना, संतोष धारण करना, समता भाव से दुःख सह लेना इत्यादि कार्यों से सातावेदनीय [सुख देने वाला कर्म] का बन्ध होता है।

अपने आपको या दूसरे को दुख देना शोक में डालना पछतावा करना-कराना, पीटना, रोना, रुलाना तथा रो रो कर ऐसा विलाप करना कि सुनने वाले का दिल धड़क उठे। इस प्रकार के कार्यों से असाता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है।

४—मोहनीय कर्म-जिसके उदय से यह आत्मा अपने आपको भूल जावे और अपने से जुदी चीजों में लुभा जावे। जैसे शराब पीने वाला शराब पीकर अपने आपको भूल जाता है उसे भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता और न वह भाई बहन स्त्री पुत्रादि को पहिचान सकता है; इसी

प्रकार मोहनीय कर्म इस जीव को भुला देता है।

जैसे कोई शीतला, पीपल आदि को देव मानता है, तथा क्रोध में आकर किसी दूसरे के प्राणों का हरण करता है या लोभ के वश होकर दूसरे को लुटाता है तो समझना चाहिये कि उसके मोहनीय कर्म का उदय है।

मोहनीय कर्म सब कर्मों का राजा कहलाता है। इस लिए इसी पर विजय प्राप्त करने का उद्यम करना चाहिए।

५—आयुकर्म उसे कहते हैं जो आत्मा को नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव शरीरों में से किसी एक में रोके रक्खे, जैसे एक मनुष्य का पैर काठ में (शिकंजे में) फंसा हुआ है, अब वह काठ उस मनुष्य को उस स्थान पर रोके हुए है। जब तक उसका पैर उस काठ में जकड़ा रहेगा तब तक वह मनुष्य दूसरी जगह नहीं जा सकता। इसी प्रकार आयु कर्म इस जीव को मनुष्य तिर्यञ्च आदि के शरीर में रोके हुए है। जब तक आयुकर्म रहेगा तब तक वह जीव उसी शरीर में रहेगा। हमारा जीव मनुष्य शरीर में रुका हुआ है। इससे समझना चाहिए कि हमारे मनुष्य आयु कर्म का उदय है।

बहुत आरम्भ करने से, बहुत परिग्रह रखने से तथा घोर हिंसा करने से नरक आयु का बन्ध होता है अर्थात् ऐसा करने से जीव नरक में जाता है।

[illegible]

छल, कपट, दगा, फरेब करने से जीव के तिर्यंच आयु का बन्ध होता है, अर्थात् ऐसा करने से यह जीव तिर्यञ्च होता है।

थोड़ा आरम्भ करने से, थोड़ा परिग्रह रखने से कोमल परिणाम रखने से, परोपकार करने से, दया पालने से मनुष्य आयु का बन्ध होता है। अर्थात् ऐसा करने से यह जीव मनुष्य पैदा होता है।

व्रत उपवास आदि करने से, शान्तिपूर्वक भूख प्यास गर्मी सर्दी आदि के दुःख सहने से, सत्य धर्म का प्रचार करने से, सत्य धर्म की प्रभावना करने से, इत्यादिक और शुभ कारणों से यह जीव देव होता है।

६—नामकर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से इस जीव के अच्छे या बुरे शरीर और उसके अङ्गोपांग की रचना हो। जैसे कोई चित्रकार (तसवीर बनाने वाला) अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, कोई मनुष्य का कोई स्त्री का कोई घोड़े का, कोई हाथी का।

किसी का हाथ लम्बा, किसी का छोटा, कोई कुबड़ा, कोई बौना, कोई रूपवान, कोई भद्दा। इसी प्रकार नाम कर्म भी इसी जीव को कभी सुन्दर, कभी चपटी नाक वाला, कभी लम्बे दाँत वाला, कभी कुबड़ा, कभी काला, कभी

सुरीली आवाज़ वाला, कभी मीठी आवाज वाला, अनेक रूप परिणमाता है। हमारा शरीर, नाक, कान, आँख, हाथ, पांव आदि सब अङ्गोपांग नाम कर्म के उदय से ही बने हुए हैं।

इस कर्म के दो भेद हैं अशुभनाम कर्म और शुभनाम कर्म। कुटिलता से, घमण्ड करने से, आपस में लड़ाई झगड़ा, कलह, करने से, झूठे देवों को पूजने से, किसी की चुगली करने से, दूसरों का बुरा सोचने से तथा दूसरों की नक़ल करने से, अनेक अशुभ कार्यों के अशुभ नाम कर्म का बन्ध होता है।

सरलता से, आपस में प्रेम रखने से, धर्मात्मा गुणी जनों को देख कर खुश होने से, दूसरों का भला चाहने से इत्यादि और शुभकारणों से शुभ नाम कर्म का बन्ध होता है।

७—गोत्र कर्म उसे कहते हैं जो इस जीव को ऊँच कुल या नीच कुल में पैदा करे—जैसे कुम्हार छोटे बड़े सब प्रकार के बरतन बनाता है, उसी प्रकार गोत्र कर्म इस जीव को उच्च या नीच बना देता है। उच्च गोत्र कर्म के उदय से यह जीव अच्छे, चारित्र वाले लोक मान्य कुल में जन्म लेता है और नीच गोत्र कर्म के उदय

से यह जीव खोटे खोटे आचरण वाले लोकनिंद्य कुल में पैदा होता है। जहां हिंसा, झूठ, चोरी आदि और पाप कर्म करता है।

दूसरों की निंदा करने से, अपनी प्रशंशा करने से, दूसरों के होते हुए भी गुणों को छिपाने से और अपने न होते हुए भी गुणों के प्रकट करने से तथा देव शास्त्र गुरु का अविनय करने से, अपने जाति, कुल, विद्या, बल, रूप आदि का मान करने से नीच गोत्र कर्म का बन्ध होता है।

अपनी निंदा, दूसरों की प्रशंसा करने से, अभिमान न करने से, विनयवान होने से, उच्च गोत्र का बन्ध होता है।

८—अन्तराय कर्म उसे कहते हैं जिसके उदय से किसी जीव के कार्य में विघ्न पड़ जावे। जैसे किसी राजा साहिब ने किसी याचक को कुछ रुपया देने का हुक्म दिया, परन्तु खजाञ्ची ने कुछ बीच में गड़बड़ अथवा कोई बहाना करके वह रुपया नहीं दिया, अर्थात् उस याचक को रुपया मिलने में खजाञ्ची साहब विघ्न रूप हो गए। ठीक इसी प्रकार अन्तराय कर्म इस जीव के दान; लाभ; भोग; (जो वस्तु एक बार काम में आवे जैसे आहार पानी); उपभोग

(जो वस्तु एक बार काम में आकर फिर भी काम में आवे जैसे वस्त्र, मकान सवारी आदि) और वह इन पाँचों के होने में विघ्न डालता है।

जैसे किसी ने दान देने के लिये १०००) रु० का नोट उठा कर रक्खा; कोई उसे चुरा कर ले गया या जैसे कोई रोटी खाने लगा तो अकस्मात बन्दर आकर हाथ से रोटी छीन ले गया, तो ऐसी हालत में अन्तराय कर्म का उदय समझना चाहिए।

किसी को लाभ होता हो न होने देना; बालकों को विद्या न पढ़ाना; अपने आधीन नौकरों को धर्म सेवन न करने देना; दान देते हुए को रोकना; दूसरों की भोग उपभोग की सामग्री बिगाड़ देना; ऐसे कार्यों के करने से जीव के अन्तराय कर्म बन्ध होता है।

प्रश्नावली

१—दुनिया में ऐसी कौनसी शक्ति है जिसके सामने किया हुआ परिश्रम भी व्यर्थ हो जाता है?

२—'परिश्रम' व कर्म इन दोनों से तुम क्या समझते हो? क्या भाग्य (कर्म) के भरोसे बैठे रहने से हमारे इच्छित कार्य पूर्ण हो सकते हैं? यदि नहीं तो क्यों?

३—कर्म किसे कहते हैं? और ये कितने होते हैं? नाम बताओ।

४—असाता वेदनीय, चारित्र मोहनीय, शुभ नाम कर्म और ऊँच गोत्र किन-किन कारणों से बँधते हैं ?

५—सब से बड़ा कर्म कौन सा है ? ज्ञानावरणी दर्शनावरणी कर्म का क्या कार्य है ?

६—बताओ तुम्हें मनुष्य शरीर में रोकने वाला कौनसा कर्म है ? और कौन से कार्य करने से तुम्हें मनुष्य गति मिली है ?

७—अन्तराय कर्म किसे कहते हैं ? एक लड़की के माता पिता ने जबरदस्ती अपनी लड़की को पाठशाला से उठा लिया तो बताओ उसके माता-पिता को कौनसा कर्मबन्ध हुआ ?

८—बताओ नीचे लिखों को किन किन कर्मों का उदय है ?

(क) श्याम ने वर्ष भर तक खूब कठिन परिश्रम किया परन्तु परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुआ।

(ख) मोहन नित्य प्रति दीन दुखी जीवों को करुणा बुद्धि से रोटी वस्त्र आदि का दान देता है, परन्तु लोग फिर भी उसकी निन्दा करते हैं।

(ग) यद्यपि राम के यहाँ नित्य प्रति अच्छे २ स्वादिष्ट फल खाने को आते हैं पर डाक्टर ने उसे खाने से मना किया हुआ है।

(घ) सोहन बड़ा आलसी है, तमाम दिन सोता ही रहता है।

(ङ) गोविन्द बड़ा मालदार है, हम कई बार उससे औषधालय तथा कन्या पाठशाला के लिये चन्दा माँगने गये, परन्तु वह

(च) मोहन की आँखों में ऐसा दर्द हुआ कि अन्त में बिचारा अन्धा ही हो गया।

६—समझाकर बताओ कि नीचे लिखों को किन-किन कर्म का बन्ध हुआ:—

(क) लड़के के फेल हो जाने पर श्याम ने अध्यापकों को बड़ी गालियाँ दीं और पाठशाला को ताला लगवा कर छोड़ा।

(ख) पाठशाला से आते हुए कुछ छात्रों को एक शराबी ने बड़ी गालियाँ दीं। उनकी पुस्तकें फाड़ीं, किसी को आँख फोड़ दी, किसी की टाँग तोड़ दी।

(ग) राम कैसे धर्मात्मा आदमी हैं, नित्य प्रति मन्दिर में शास्त्र पढ़ते हैं, कुछ वेतन नहीं लेते, पर फिर भी लोग मन्दिर से बाहर निकलते ही उनकी निन्दा किया करते हैं और बुरे से बुरा लांछन लगाने को तत्पर रहते हैं।

(घ) सोहन बड़ा मानी है। आज त्यागी जी महाराज और हम एक छात्र की सहायता के लिये गये, बात तक न सुनी, तेवड़ी में बल डाल लिया और झट से हमें बाहर खड़ा कर घर में घुस गया।

(ङ) सुभद्रा सवेरे सात बजे से आठ बजे तक मन्दिर में बैठी रहती है, जो कोई भी लड़की या स्त्री आती है, किसी को आलोचना पाठ व भक्तामर सुनाती है, किसी को किसी व्रत की कथा सुनाती है और किसी से भी पैसा तक नहीं लेती।

(च) क्या कहने हैं राम के ! बड़ा उद्दंड है। मन्दिर में आता, वहाँ भी चुपके नहीं रहता। किसी की निन्दा तो कि को गाली। महा मानी। जो मिल जाय उसी को धमकाना। किसी की पूजा में विघ्न डालना तो किसी को स्वाध्याय करने देना। निराले ही ढंग का आदमी है।

पाठ ७

भजन (रे मन !)

(१)

रे मन ! भज-भज दीन दयाल,
जा को नाम लेत इक छिन में।
कटें कोटि अघ जाल,
रे मन ! भज-भज दीन दयाल॥

(२)

परम ब्रह्म परमेश्वर स्वामी,
देखे होत निहाल।
सुमरन करत परमसुख पावत,
सेवत भाजे काल।
रे मन ! भज-भज दीन दयाल॥

(३)

इन्द्र फनीन्द्र चक्रधर गावें,
जा को नाम रसाल।
जा को नाम ज्ञान परकाशै,
नाशे मिथ्या जाल।
रे मन! भज-भज दीन दयाल॥

(४)

जा के नाम समान नहीं कुछ,
ऊरध मध्य पताल।
सोई नाम जपो नित 'द्यानत'
छांड़ि विषय विकराल।
रे मन! भज-भज दीन दयाल॥

प्रश्नावली

१ दीन दयाल से तुम क्या समझते हो? और बताओ दीन दयाल कौन हैं?
२ परमात्मा का नाम जपने से क्या लाभ है?
३ बताओ इस भजन के बनाने वाले कौन हैं?
४ इस भजन का तीसरा छन्द कण्ठस्थ सुनाओ।
५ इस पद को पढ़ कर सुनाओ और इसका अर्थ भी समझाओ

...और झूँठ बनाने से नहीं बनता।

पाठ ८

जम्बु कुमार

तीर्थंकर महावीर स्वामी के समय की बात है। उस समय मगध देश में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उस समय के राजाओं में श्रेणिक बहुत प्रसिद्ध और पराक्रमी राजा था। राजग्रही उसकी राजधानी थी। वहीं पर उस का राज्य सेठ रहता था। उसका नाम जिनदत्त था। जम्बुकुमार इसी राज्यसेठ का पुत्र था।

जम्बुकुमार ने जब होश सँभाला, तो उसे ऋषिगिरि जैन आश्रम में पढ़ने के लिए भेज दिया गया। जहां जम्बुकुमार ने एक ब्रह्मचारी का जीवन बिताया था और अपने गुरुओं की आज्ञानुसार शास्त्र-विज्ञान, कलाकौशल और अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा पाई थी। इसी प्रकार तपोधन गुरुओं की संगति में रहते हुए युवावस्था तक पहुँचते २ जम्बुकुमार शस्त्र-शास्त्र में निपुण हो गया। गुरुजन ने उसको अपने आश्रम से विदा किया। वह विनय पूर्वक गुरुजन का आशीर्वाद लेकर घर आया। माता-पिता अपने पुत्र को सब विद्याओं में निपुण देख कर फूले अंग न समाये।

तपोवन में रहने से जम्बुकुमार का स्वभाव बड़ा दयालु और सत्यनिष्ट हो गया था. उसके मन को दुनियादारी की थोथी बातें नहीं रिझा पाती थीं। सत्य और न्याय के लिए वह अपना सब कुछ देने के लिए तैयार रहता था। इन गुणों के साथ-साथ जम्बुकुमार देखने में बड़ा सुन्दर और रूपवान था। उसके रूप और गुणों की चर्चा सारी राजग्रही में होती थी।

राज्य सेठ ने देखा, कि उसका पुत्र विवाह के योग्य हो गया है, उसको उसका विवाह करने की चिन्ता हुई। चार सेठों की पुत्रियों के साथ जम्बुकुमार का सम्बन्ध निश्चित किया गया।

राजा श्रेणिक को खबर मिली कि रत्नचूल नामक विद्याधर राजा उसके विरुद्ध हो गया उसे शत्रु का वश में करने की चिन्ता हुई। एक दिन सभा में राजा श्रेणिक ने कहा कि "कौन योद्धा ऐसा है कि जो शत्रु को वश में कर सके।" सभा में सेठ-कुमार जम्बुकुमार भी बैठा था। वह झट से उठ कर खड़ा हो गया और कहा—"मैं वश में कर ले आऊँगा।" राजा ने आज्ञा दे दी। मंत्रियों की राय से राजा श्रेणिक ने जम्बुकुमार को सेना लेकर रत्नचूल को वश में करने के लिए भेजा।

जम्बुकुमार ने अपने रणकौशल्य से उस राजा को जीत लिया। वैश्यपुत्र होते हुए भी उस वीर ने उस क्षत्रिय की वीरता को परास्त कर दिया। राजा श्रेणि जम्बुकुमार की इस विजय पर बड़े प्रसन्न हुए और कुमार का बड़ा सम्मान किया।

जब जम्बुकुमार विजय का डंका बजाते हुए राजगृही में प्रवेश कर रहे थे, तब नगर के बाहर वन में श्री सुधर्मा-चार्य का उपदेश हो रहा था। जम्बुकुमार भी सुनने बैठ गए। उपदेश सुन कर कुमार को संसार से वैराग्य हो गया। कुमार ने यह ठान ली कि घर जाकर हम अ विवाह नही करेंगे और कल ही आकर साधु हो जायें आत्म कल्याण करेंगे।

इधर माता-पिता जम्बुकुमार की वीरता के समाचा सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। पुत्र ने अवसर पाकर पित को अपने दीक्षा लेने का विचार कह दिया और विवा करने से इन्कार कर दिया। यह खबर जब उन लड़किय को पहुँची, जिनके साथ जम्बुकुमार का सम्बन्ध हुआ था तो उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि "हम तो कुमार को छो कर और किसी के साथ विवाह नहीं करेंगी!" लड़किय की ऐसी हठ होने पर माता-पिता के अति आग्रह व

चारों बहुवें रात्रि को जम्बुकुमार को अपनी रसीली-रसीली बातों से मोहित करने लगीं। कुमार वैराग्य भरी बातों से ऐसा उत्तर देते थे कि वे मन में अपनी हार मान जाती थीं।

सवेरा होते ही जम्बुकुमार अपने दृढ़-संकल्प वश घर से चल पड़े। पीछे पीछे, माता-पिता, चारों स्त्रियाँ व एक विद्युतचर चोर जो चोरी करने आया था और कुमार और उनकी स्त्रियों की सब वार्तालाप सुन रहा था चल पड़े। कुमार ने सुधर्माचार्य के पास केशलोंच कर साधुव्रत ग्रहण किया। माता-पिता व चारों स्त्रियों ने व विद्युतचर चोर ने भी दीक्षा धारण की। अब जम्बुकुमार दिल लगा कर आत्म ध्यान करने लगे और शीघ्र ही केवल ज्ञान को प्राप्त किया। ६२ वर्ष के पीछे जम्बुकुमार ने मुक्ति प्राप्त की। केवल ज्ञान के पीछे श्री जम्बुकुमार ने बहुत वर्षों तक संसार का बड़ा उपकार किया। मथुरा चौरासी का स्थान श्री जम्बुकुमार का निर्वाणक्षेत्र प्रसिद्ध है।

बालको! तुम भी जम्बुकुमार के जीवन से शिक्षा-ग्रहण करो। प्रतिज्ञा कर लो कि जब तक तुम खूब लिख-पढ़ कर होशियार न हो जाओ विवाह नहीं करोगे। पढ़ते

[illegible] का बड़ा सम्मान किया।

जब जम्बूकुमार विजय का डंका बजाते हुए नगर में प्रवेश कर रहे थे, तब नगर के बाहर वन में श्री सुधर्माचार्य का उपदेश हो रहा था। जम्बूकुमार भी सुनने बैठ गए। उपदेश सुन कर कुमार को संसार से वैराग्य हो गया। कुमार ने यह ठान ली कि घर जाकर हम अब विवाह नहीं करेंगे और वन ही जाकर साधु हो जायेंगे आत्म कल्याण करेंगे।

इधर माता-पिता जम्बुकुमार की वीरता के समाचार सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। पुत्र ने अवसर पाकर पिता को अपने दीक्षा लेने का विचार कह दिया और विवाह करने से इन्कार कर दिया। वह खबर जब उन लड़कियों को पहुँची, जिनके साथ जम्बुकुमार का सम्बन्ध हुआ था, तो उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि "हम तो कुमार को छोड़ कर और किसी के साथ विवाह नहीं करेंगी!" लड़कियों की ऐसी हठ होने पर माता-पिता के अति आग्रह वश

चारों वहुवें रात्रि को जम्बुकुमार को अपनी रसीली-रसीली बातों से मोहित करने लगीं। कुमार वैराग्य भरी बातों से ऐसा उत्तर देते थे कि वे मन में अपनी हार मान जाती थीं।

सवेरा होते ही जम्बुकुमार अपने दृढ़-संकल्प वश घर से चल पड़े। पीछे पीछे, माता-पिता, चारों स्त्रियाँ व एक विद्युतचर चोर जो चोरी करने आया था और कुमार और उनकी स्त्रियों की सब वार्तालाप सुन रहा था चल पड़े। कुमार ने सुधर्माचार्य के पास केशलोंच कर साधुव्रत ग्रहण किया। माता-पिता व चारों स्त्रियों ने व विद्युतचर चोर ने भी दीक्षा धारण की। अब जम्बुकुमार दिल लगा कर आत्म ध्यान करने लगे और शीघ्र ही केवल ज्ञान को प्राप्त किया। ६२ वर्ष के पीछे जम्बुकुमार ने मुक्ति प्राप्त की। केवल ज्ञान के पीछे श्री जम्बुकुमार ने बहुत वर्षों तक संसार का बड़ा उपकार किया। मथुरा चौरासी का स्थान श्री जम्बुकुमार का निर्वाणक्षेत्र प्रसिद्ध है।

बालको! तुम भी जम्बुकुमार के जीवन से शिक्षा-ग्रहण करो। प्रतिज्ञा कर लो कि जब तक तुम खूब लिख-पढ़ कर होशियार न हो जाओ विवाह नहीं करोगे। पढ़ते

पाठ ६

पञ्च परमेष्ठी

जो महान आत्मायें 'परमे' अर्थात् उच्च स्वरूप में परम समताभावमें तिष्ठती हैं, वे परमेष्ठी कहलाती हैं। अध्यात्म विकास में सर्वोत्कृष्ट, परमोच्च पद पर पहुंची हुई आत्मायें ही परमेष्ठी मानी गई हैं।

अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा साधु ये पंच परमेष्ठी हैं अर्थात् परमइष्ट हैं। इनका ध्यान करने से तथा इनका स्मरण करने से भावों की शुद्धि और वैराग्य-उत्पत्ति होती है। पापों का नाश होता है।

अरहन्त परमेष्ठी

जिन महान आत्माओं ने अष्ट कर्मों में से आत्मा के शुद्ध स्वभाव को भ्रष्ट करने वाले ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनी और अंतराय इन चारों घातिया कर्मों को नष्ट कर दिया है और इनके नष्ट होने पर जिनकी आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य यह चार गुण प्रगट हो गये हैं वे 'अरिहंत परमेष्ठी' कहलाते हैं। अरहन्त परमेष्ठी परमौदारिक शरीर के धारी जीवन मुक्त परमात्मा होते हैं। जन्म से ही उनका शरीर अत्यन्त ... मदौल परम सुगन्धिमय, वज्रमयी, प्रसव रहित,

ता है । जिस सभा मंडप में भगवान का उपदेश होता
उसे समवसरण कहते हैं । वहां केवल मनुष्य ही नहीं पशु
ी तक भी पहुँच कर अपना कल्याण कर लेते हैं ।
गवान का उपदेश इस प्रकार ध्वनित होता है कि सब
णी अपनी २ भाषा में उसे समझ लेते हैं। यह प्रभु के
उपदेश की एक विशेषता है ।

जैन मंदिरों में इनही अरहन्त भगवान की परमशान्त
मुद्रा तथा परम वैराग्य भाव की द्योतक प्रतिमायें विराज-
मान होती हैं जिनका दर्शन पूजन जैन लोग किया करते
हैं । इनका पूजन केवल अपने परिणामों की शुद्धि के निमित्त
ही किया जाता है किसी भय से या किसी आशा से मान
बड़ाई के लिये या किसी फल की प्राप्ति की इच्छा से नहीं
किया जाता । भगवान के गुण का स्मरण हमारे मन को पाप
रूपी कीच से साफ कर देता है । अरहन्त की पूजा गुण
पूजा है, अहिन्सा, सत्य, क्षमा आदि अध्यात्मिक गुणों का
आशा ही गुणपूजा का कारण है । सूर्य कमल को खिलाने
लिये कमल के पास नहीं आता, सूर्य उदय होते ही कमल
स्वय खिल उठते हैं। कमलों के विकास में सूर्य प्रबल निमि-
त कारण है, साक्षात् कर्ता नहीं है । इसी प्रकार अरहन्त
आदि महान आत्माओं का स्मरण गुण गान संसारी आ-
... निमित्त कारण बनता है, सत्पुरुषों के

नाम लेने से विचार पवित्र होते हैं। विचार पवित्र होने से अन्य संकल्प नहीं होते। आत्मा में बल, साहस, शक्ति का संचार होता है निज स्वरूप का भान होता है और तब कर्म बन्धन उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जिस तरह लंका में ब्रह्म पाश में बँधे हुये हनुमान के दृढ बंधन छिन्न-भिन्न हो गये थे। कब? जब कि उसे यह भान हुआ कि मैं हनुमान हूं मैं इन्हें तोड़ सकता हूं।

अरहन्त का उपासक सतत् प्रयत्न द्वारा परंपरा से स्वयं अरहन्त पद को प्राप्त कर लेता है, जैन धर्म की यह एक विशेषता है।

सिद्ध परमेष्ठी

ऊपर पढ़ चुके हो कि एक संसारी जीव जब आठ कर्मों में से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मों का तपश्चरण द्वारा नाश कर देता है तो जीवन मुक्त अरहन्त परमात्मा हो जाता है, अरहन्त ही सकल परमात्मा तथा साकार परमात्मा हैं। ये ही अरहन्त जब शेष आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय चार अघातिया कर्मों को भी नष्ट कर देते हैं। तो वे शरीर और संसार के बंन्धनों से सदैव के लिये छूट जाते हैं और जिस देह से मुक्ति पाई है उसी देह के आकार ऊर्द्ध गमन स्वभाव से लोक के अन्त तक ऊपर जाते हैं। आगे धर्म द्रव्य का

भाव होने के कारण लोक के शिखर पर ही विराजमान रहते और मोक्ष के शास्वत सुख को भोगते हैं। जन्म-मरण के क से सदैवके लिये छुटकारा पाकर अजर-अमर सिद्ध द्व-मुक्त हो कर मोक्ष को प्राप्त हो "सिद्धपद" से संबोधित ते हैं, फिर कभी लौटकर संसार में आते नहीं। वैसे तो द्ध परमेष्ठी अनंत गुणों के स्वामी होते हैं पर उनमें चे लिखे आठ मुख्य गुण होते हैं—क्षायिक-सम्यक्, नंतदर्शन, अनंतज्ञान, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, नंतवीर्य और अव्याबाधत्व।

प्रत्येक मुमुक्षुभव्यात्मा भेद विज्ञान के द्वारा अपने द्ध चिदानंदरूप निज स्वभाव को पहचान कर उस में ही रण करता है तो वह वीतराग भाव को बढ़ाता हुआ कर्म न्धनों को काटता हुवा आगे बढ़ता हुवा चला जाता है, ानाग्नि द्वारा कर्ममल को दग्ध कर परमपद मोक्ष पद को प्त कर सकता है। सर्व विकारों से तथा शरीरादिक से हित अमूर्तिक हो शुद्ध चैतन्य मय अविनाशी सिद्ध पर-त्मा हो जाता है और अपने निरावरण अनंतदर्शन तथा नंत ज्ञान स्वरूप को लिये परम ज्ञानानंद में अतिशय ग्न, निरंतर ही लोक के शिखरस्थित मोक्ष स्थान में काशमान रहता है।

आचार्य परमेष्ठी

जैन-धर्म में आचरण का बड़ा महत्व है, पद-पद पर

सदाचार के मार्ग पर ध्यान रखना ही जैन साधक की श्रेष्ठता का प्रमाण है। अस्तु जो पंच आचार का स्वयम् पालन करते हैं, और संघ का नेतृत्व करते हुये दूसरों से पालन कराते हैं "वे आचार्य" कहलाते हैं। आचार्य दीक्षा और शिक्षा का कार्य करते हैं जैन आचार के अहिन्सा सत्य, अचार्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच मुख्य अंग हैं, आचार्य को इन पांचों महाव्रतों का प्राण-प्रण से स्वयम् पालन करना होता है, अन्य भव्य आत्माओं को भी भूल होने पर, उचित प्रायश्चित आदि देकर, सत्पथ पर अग्रसर करना होता है। साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका ये चार प्रकार का संघ होता है, इसकी अध्यात्मिक साधना के नेतृत्व का भार आचार्य पर होता है।

आचार्य बड़े तपस्वी होते हैं, वे सर्व प्रकार के भोजन का त्याग करके उपवास करते हैं। भूख से कम भोजन लेते हैं। भोजन के लिये जाते हुये कड़ी आखड़ी लेकर जाते हैं किसी को अपनी आखड़ी बताते नहीं, यदि आखड़ी पूरी नहो तो समता भाव के साथ उपवास करते हैं। दूध, दही, घी, मीठा, नमक और तेल इन छहों रसों में से यथा शक्ति एक का या अधिक का त्याग करते हैं नीरस भोजन करते हैं। एकान्त स्थान में शयनासन करते हैं। शरीर का सुखियापन मिटाने के लिये घोर तपस्या करते हैं। इनके अति-

रिक्त लगे हुवे दोषों का दंड लेते हैं। सम्यक् दर्शन, सम्यक ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र रूप रत्नमय की तथा रत्नत्रय धारकों की विनय करते हैं। संघ में रोगी तथा वृद्ध अशक्त मुनियों की सेवा करते हैं। शास्त्र स्वाध्याय तथा आत्मध्यान में रत रहते हैं। शरीर से ममत्व भाव को हटाते हैं। उत्तम क्षमा मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य इस दश लक्षण धर्म का पालन निर्दोष करते हैं। प्राणी मात्र से समता भाव रखते हैं, जिनेन्द्र प्रभु को नमस्कार करते हैं, पंच परमेष्ठी की स्तुति करते हैं, लगे हुवे दोषों का पश्चाताप करते हैं, शास्त्रों का स्वाध्याय करते हैं और शरीर से ममत्वभाव को त्याग आत्मध्यान आदि कर्मों की निर्जरा हेतु करते हैं। आचार्य सदा काल सम्यक दर्शन की निर्मलता, सम्यक् ज्ञानकी वृद्धि तथा सम्यक् चरित्र की विशुद्धता के लिये प्रयत्न शील रहते हैं। तप की वृद्धि करते हुवे अपने आत्मबल को अधिकाधिक विकास में लाते हैं, सदैव ही अपने मन वचन, काय पर पूरा काबू रखते हैं।

जैन आचार्य बड़े सदाचारी दृढ़ प्रतिज्ञ, दयालु, निस्पृही तपस्वी तथा ज्ञानी-ध्यानी और पराक्रमी तथा साहसी हुवा करते हैं, परोपकार बुद्धि तथा धर्म भावना को लेकर ही प्राचीन आचार्यों ने कितने जैन-सिद्धान्त ग्रन्थों तथा साहित्य का प्राकृत, संस्कृत तथा तामिल आदि भाषाओं

में निर्माण किया है जो आज भी जैन शास्त्र भंडारों की शोभा को बढ़ा रहे हैं और कितने ही अन्य जीवों को उनके कल्याण मार्ग का दिग्दर्शन करा रहे हैं।

उपाध्याय परमेष्टी

जो विशेष ज्ञानी मुनिराज स्वयम् पढ़ते हैं तथा अन्य शिष्यों को पढ़ाते हैं "उपाध्याय" कहलाते हैं। ये ११ अंग तथा १४ पूर्वों के पाठी होते हैं। जिन वाणी का पठन पाठन करते हैं। अनेक शास्त्रों की रचना करते हैं। वास्तव में विद्या वही है जो हमें विषय वासनाओं से मुक्त कर सके, अस्तु विवेक ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। भेद विज्ञान के द्वारा जड़ और आत्मा के जुदा २ होने का भान होने पर ही साधक अपना ऊँचा एवं आदर्श जीवन बना सकता है, ऐसी अध्यात्मिक विद्या के शिक्षण का भार उपाध्याय पर है। उपाध्याय महराज मनुष्य जीवन की अन्तःग्रन्थियों को बड़ी सूक्ष्म पद्धति से सुलझाते हैं और अनादिकाल से अज्ञान अंधकार में भटकते हुये भव्य प्राणीयों को विवेक का प्रकाश प्रदान करते हैं।

साधु परमेष्टी

जो मोक्ष पुरुषार्थ का साधन करते हैं उन्हें साधु कहते हैं। उनके पास कुछ भी परिग्रह नहीं होता और न वह कोई

आरंभ करते हैं। वे सदा ज्ञान ध्यान में लीन रहते हैं सं संसार वासनाओं को त्याग कर पांचों इन्द्रियों को अप वश में रखते हैं, ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ों की रक्षा करते हैं क्रोध मान माया लोभ पर तथा शत्रु विजय प्राप्त करते हैं अहिंसा सत्य अचौर्य और अपरिग्रहरूप पांच महाव्रत पालते हैं, पांच समिति और तीन गुप्तियों की सम्यक्तया आराधना करते हैं; ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार इन पंचाचारों के पालन में दिन रात संलग्न रहते हैं वे साधु कहलाते हैं।

जैन साधु मन, वचन, काय से सर्वथा हिंसा झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पंच पापों के त्यागी होते हैं, उनके पास तिल तुषमात्र भी परिग्रह नहीं होता है। जब वह चलते हैं तो प्रमाद रहित चार हाथ प्रमाण आगे प्रासुक भूमि को शोध कर दिन में भूमि पर चलते हैं। सदा हित मितवचन बोलते हैं दिन में एक बार निर्दोष शुद्ध आहार लेते हैं। अपने पासके ज्ञानोपकरण शास्त्र तथा शुद्धि के उपकरण कमंडलु और पीछी को भूमि को खूब अच्छी तरह देख भाल कर सावधानी से धरते और उठाते हैं। जीव जन्तु रहित प्रासुक भूमि देख कर अपने मल मूत्रादिको डालते हैं।

पांचों इन्द्रियों को वश में रखते हैं उनके इष्ट-अनिष्ट

विषयों के प्रति राग द्वेष नहीं करते, इन्द्रिय विजयी होते हैं। प्राणी मात्र पर समताभाव रखते हैं, जिनेन्द्र प्रभु को वन्दना नमस्कार करते हैं। पंच परमेष्टी की स्तुति करते हैं। लगे हुए दोषों का पश्चाताप करते हैं, शास्त्रों का पठन पाठन तथा मनन करते हैं। शरीर से ममत्व छोड़ खड़े होकर ध्यान करते हैं। दि० जैन साधु स्नान नहीं करते, स्वच्छ भूमि पर, पत्थर की शिला पर या काठ के पाटे आदि पर सोते हैं, नग्न रहते हैं, बालों का अपने हाथ से लोच करते हैं, दिन में एक बार खड़े होकर पाणि पात्र में ही आहार लेते हैं, दन्त धोवन नहीं करते। इस प्रकार साधु २८ मूल गुणों के धारक होते हैं।

संसार में सच्चे गुरु अर्थात् साधु क्षमागुण से भूषित [illegible], पृथ्वी के समान अचल, समुद्र के समान गम्भीर वायु के समान निष्परिग्रही, अग्नि के समान कर्म भस्म [illegible] आकाश के समान निर्लेप, जल के समान [illegible] [illegible] मेघ के समान परोपकारी होते हैं। [illegible] परमध्यानी तथा दृढ़ वैरागी होते हैं [illegible] वे ही परम पूज्य तथा वन्दनीय हैं।

[illegible] परमेष्ठि [illegible] आचार्य, उपाध्याय, [illegible] आचार्य, उपाध्याय और साधु तीनों

अभी साधक ही हैं अतः अपने से नीची श्रेणी वाले श्रावक आदि साधकों के पूज्य और उच्च श्रेणी के अरहन्त आदि देवत्व के पूजक होने से गुरुत्व की कोटि में हैं। इन पंच परमेष्ठि का स्मरण करने से, आराधन करने से पापों का नाश हो जाता है और आत्मीक गुणों का विकाश होता है।

छप्पय

प्रथम नमूं अरहंत, जाहि इन्द्रादिक ध्यावत।
वंदूं सिद्धन महंत, जासु सुमरत सुख पावत॥
आचारज वंदामि, सकलश्रुत ज्ञान प्रकाशत।
वंदत हूँ उवझाय, जासवंदत अघ नाशत॥
जे साधु सकल नर लोकमें, नमत तास संकटहरन।
यह परम मंत्र नितप्रति जपो, विघन उलट मंगल करन॥

प्रश्नावली

१—'परमेष्ठी' से आप क्या समझते हैं? परमेष्ठी कितने होते हैं? उनके नाम बताओ।
२—अरहंत परमेष्ठी किन्हें कहते हैं? उनके जो गुण आपको मालूम हैं अपने सरल शब्दों में बताइये।
३—अरहन्त परमेष्ठी में कौन से १८ दोष नहीं पाये जाते।
४—अरहंत परमेष्ठी की पूजा, वन्दना से हमें क्या लाभ होता है।
५—सिद्ध परमेष्ठी किन्हें कहते हैं? उनके मुख्य गुण बताइये?
६—सिद्धपरमेष्ठी और अरहन्त परमेष्ठी में क्या अन्तर है?

पाठ १०

गुरु स्तवन

ते गुरु मेरे उर बसो; तारन तरन जहाज ।
आप तिरें पर तारहीं, ऐसे श्री मुनिराज ॥ ते गुरु । टेक

मोह महारिपु जीत के, छोड़ दियो घरबार ।
होय दिगंबर वन बसें, आतम शुद्ध विचार ॥ १ ॥ ते०

रोग उरग वपुबिलगिन्यो, भोग भुजंग समान ;
कदली तरु संसार है, छांड्यो यह सब जान ॥ २ ॥ ते०

रत्नत्रय निधि उर धरैं, अरु निर्ग्रन्थ त्रिकाल ।
जीतें काम खबीस को, स्वामी परम दयाल ॥ ३ ॥ ते०

धर्म धरें दस लखणी, भावें भावना सार।
सहैं परिषह बीस दो, चारित्र रत्नभंडार ॥ ४ ॥ ते०
जेठ तपे रवि आकरो, सूखे सरवर नीर।
शैल शिखर मुनि तप तपें, दाहें नगन शरीर ॥ ५ ॥ ते०
पावस रयन डरावनी, बरसे जलधर धार।
तरु तल निवसें साहसी, चाले झंझा बयार ॥ ६ ॥ ते०
शीत पड़े कपि मद गले, दाहैं सब वन राय।
ताल तरंगनि तट विषें, ठाड़े ध्यान लगाय ॥ ७ ॥ ते०
इस विधि दुद्धर तप तपें, तीनों काल मझार।
लागे सहज स्वरूप में, तन से ममता टार ॥ ८ ॥ ते०
रंग महल में सोवते, कोमल सेज बिछाय।
ते सोवें निशि भूमि में, पोढ़ें संवर काय ॥ ९ ॥ ते०
गज चढ़ चलते गर्व से, सेना सज चतुरङ्ग।
निरख-निरख पग वे धरें, पालें करुणा अङ्ग ॥ १० ॥ ते०
पूरब भोग न चितवें, आगम वांछा नाहिं।
चहुँगति के दुख से डरें, सुरति लगी शिवमाहिं ॥११॥
ये गुरु चरण जहाँ धरें, जग में तीरथ होय।
सो रज मम मस्तक चढ़ो, 'भूधर' मांगे सोय ॥१२॥ ते०

प्रश्नावली

१—गुरुवचन से तुम क्या समझते हो? बताओ इसके बताने वाले कौन हैं?

२—वास्तविक गुरु कौन हैं? और उनमें क्या क्या विशेषताएं होनी परमावश्यक हैं?

३—परीषह कितनी होती हैं और इनको कौन और किस लिये सहते हैं?

४—संसार-सागर से तारने के लिये गुरु किसके समान होते हैं?

५—दश लक्षण धर्म के नाम बताओ?

६—बारह भावनाओं के नाम बताओ?

७—रत्नत्रय किसे कहते हैं?

पाठ ११

गृहस्थोंके दैनिक षट् कर्म

गृहस्थी लोग पाप क्रियाओं का सर्वथा त्याग न[illegible] कर सकते। गृहस्थ में रहते हुए खाने पीने, धन कमा[illegible] मकान बनाने, विवाह आदि करने के लिए अनेक प्रकार के आरम्भ करने पड़ते हैं, जिनको करते हुए भी हिंसा[illegible] के दोष लग ही जाते हैं। इन्हीं के साथ दोषों को दूर करने [illegible] करने तथा अपनी आत्मोन्नति करने के लि[illegible] आचार्यों ने गृहस्थ के छह दैनिक कर्तव्य बताये गये हैं।

'देवपूजा गुरूपास्ति; स्वाध्याय: संयमस्तप:।
दानं चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने-दिने॥'

अर्थात्—नित्य प्रति जिनेन्द्र देव की पूजा करना, ़ की भक्ति करना, स्वाध्याय करना, संयम का पालन ना, तप का अभ्यास करना और दान का देना, ये स्थों के छह दैनिक कर्तव्य हैं।

(१) देवपूजा—श्री अरहन्त तथा सिद्ध भगवान का न करना। यदि अरहंत भगवान साक्षात् मिलें तो उनकी ा में जाकर अष्टद्रव्य से भक्ति सहित पूजन करना ाहिए, अन्यथा उनकी वैसी ही ध्यानाकार शान्तिमय तराग प्रतिमा को विराजमान करके उसके द्वारा अरहंत ावान का पूजन करना चाहिये। हमारी आत्मा पर जैसा ाव साक्षात् अरहंत के दर्शन व पूजन से पड़ता है ा ही प्रभाव उनकी ध्यानमय वीतराग प्रतिष्ठित तेमा के दर्शन व पूजन से पड़ता है। प्रकट देखा जाता कि जैसे चित्र देखने में आते हैं वैसे ही भाव देखने ले के चित्त में अवश्य पैदा होते हैं। मन्दिर में भगवान वीतराग शान्तिमय प्रतिमा के देखने से हृदय आप ही ाप वैराग्य भाव से भर जाता है और उनके निर्मल गुण रण हो जाते हैं। उसके भाव शुद्ध होते हैं। इसलिए हस्थों को चाहिए कि वे नित्य प्रति अष्टद्रव्य से या भी एक द्रव्य से भगवान का पूजन करें। प्रतिमा का ापना मात्र भावों को बदलने के लिए, प्रतिमा से कुछ

मांगने की न जरूरत है, न प्रतिमा इसलिए स्थापित की जाती है।

देव पूजा से पापों का क्षय और पुण्य का बन्ध होता है तथा मोक्षमार्गकी प्राप्ति होती है। दर्शन प्रत्येक बालक-बालिका, स्त्री-पुरुष को नित्य करना चाहिये। पूजन यदि नित्य न हो सके तो कभी-कभी अवश्य करना चाहिये। जहाँ प्रतिमा या मन्दिर का समागम न हो वहां परोक्ष ध्यान करके स्तुति पढ़लेनी चाहिए तथा एक दो जाप और पाठ करके भोजन करना चाहिये।

२. गुरु भक्ति—गुरु शब्द का अर्थ यहाँ सच्चे धर्मगुरु अर्थात् मुनिमहाराज से समझना चाहिए निर्ग्रन्थ गुरु की सेवा पूजा तथा संगति करना "गुरुभक्ति" कहलाती है। गुरु साक्षात् उपकार करने वाले होते हैं, वे अपने उपदेश द्वारा गृहस्थों को सदा धर्म कार्य की प्रेरणा दिया करते हैं गुरु तारण तरण जहाज हैं। आप संसारूपी समुद्र से पार होते हैं और दूसरे जीवों को भी पार उतारते हैं। इसलिए गृहस्थों को सदा भक्ति पूर्वक गुरु उपासना तथा सेवा करनी चाहिये। यदि अपने स्थान में गुरु महाराज न हों तो उनका स्मरण करके मन पवित्र करना चाहिये। तथा धर्म के प्रचारक ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि हों तो उनकी सेवा संगति करके धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

, स्वाध्याय—तत्त्व बोधक जैनशास्त्रों को विनय
क भक्ति सहित समझ समझ कर पढ़ना और दूसरों को
ाना चाहिए—यदि पढ़ना न आये तो सुनना व धर्म-
र्ा करनी चाहिये। जिस-जिस तरह हो सके ज्ञान को
ाना चाहिए। स्वाध्याय एक प्रकार का तप है। इससे
द्व का विकास होता है। परिणाम उज्ज्वल होते हैं,
ाक गुणों की प्राप्ति होती है।

. संयम—पापों से बचने के लिए अपनी क्रियाओं
नियम बाँधना चाहिए। पाँचों इन्द्रियों और मन को
में करने के लिए नित्य सवेरे ही २४ घन्टे के लिए
ा उपभोग के पदार्थों को अपने काम के योग्य रख के
का त्याग करना चाहिए, जैसे आज हम मीठा
तन नहीं खायेंगे। सांसारिक गीत नहीं सुनेंगे। वस्त्र
े काम में लेंगे इत्यादि। तथा पृथ्वी, जल, अग्नि,
ु, वनस्पति और त्रस इन छः प्रकार के जीवों की रक्षा
भाव रखना और व्यर्थ उनको कष्ट न देना चाहिये।
लिए गृहस्थों के लिए जरूरी है कि वह नित्य-प्रति
ंम पालन का अभ्यास किया करें। संयम एक दुर्लभ
तु है। संयम का पालन केवल मनुष्य गति में ही हो
ाता है। संयम के बिना मनुष्य जन्म निष्फल होता

है। विद्यार्थियों को चाहिये कि वह भावना भावें कि उनके जीवन की एक घड़ी भी संयम के बिना न जावे। संयम पालने के लिये उचित है कि हम बुरी आदतों को छोड़ें। अपना खान पान पहनावा आदि सादा रक्खें। फैशन के दास न बनें। चाय, सोडा, तम्बाकू, बीड़ी, चुरट, शराब आदि नशे की चीजें मसालेदार चाट. खोमचे और बाजार की बनी हुई अशुद्ध मिठाई आदि का सेवन न करें। भावों को बिगाड़ने वाले नाटक, सिनेमा-नाच, स्वांग, तमाशे न देखें तथा विकार पैदा करने वाले उपन्यास तथा कहानियाँ न पढ़ें।

५. **तप**—से मतलब नित्य सवेरे व शाम एकान्त में बैठ कर सामयिक करने से है। आत्म-ध्यान की अग्नि में आत्मा को तपाना तप है। इससे कर्मों का नाश होता है। बड़ी शान्ति मिलती है। आत्म-सुख का स्वाद आता है। आत्म-बल की वृद्धि होती है। इसलिये सवेरे-शाम सामायिक अवश्य ही करना चाहिये।

६. **दान**—अपने और पर के उपकार के लिए फल की इच्छा के बिना प्रेमभाव से धनादि का तथा स्वार्थ का त्याग करना दान कहलाता है। जो दान मुनियों व्रती श्रावकों तथा अव्रती सम्यक्ती श्रेष्ठ पुरुषों को भक्ति सहित दिया जाता है व पात्रदान कहलाता है। और जो

पशुओं के भय निवारण के लिए धर्मशाला व पशुशाला बनवाना अभयदान है।

ऊपर लिखे चारों प्रकार के दानों में से कुछ न कुछ नित्य प्रति करना गृहस्थी का नित्य दैनिक दान कर्म है। सवेरे भोजन करने से पहले आधी रोटी दान के लिये निकाले बिना भोजन न करना चाहिये। गृहस्थों को उचित है कि जो पैदा करें उसका चौथाई भाग या, छठा या आठवां या कम से कम दसवाँ भाग दान व धर्म की उन्नति के लिये निकालें, अपना जीवन सादगी से बितावें, विवाह आदि में कम खर्च करें, परोपकार में अधिक धन लगावें।

५—संयम किसे कहते हैं? और संयम रखना क्यों आवश्यक है? संक्षेप में बताओ कि कौन से कर्मों का त्याग संयम माना जा सकता है?

६—बताओ गृहस्थों के दैनिक कर्मों में तप का क्या अर्थ है?

७—दान किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार का है?

८—धर्मशाला बनवाना, पाठशाला खुलवाना तथा औषधालय खुलवाना और भिक्षुकों को भोजन देना, ये कौन से दान हैं?

पाठ १२

श्रावक के पाँच अणुव्रत (अ)

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों का बुद्धि पूर्वक त्याग करना व्रत कहलाता है।

व्रत के दो भेद हैं **महाव्रत** और **अणुव्रत**। मन वचन काय से पाँचों पापों का बुद्धि पूर्वक सम्पूर्ण त्याग करना **महाव्रत** कहलाता है इनका पालन मुनिराज ही कर सकते हैं।

हिंसादि पाँच पापों का मोटे रूप से एक देश त्याग करना **अणुव्रत** कहलाता है। अणुव्रत पाँच हैं:—

(१) अहिंसाणुव्रत (२) सत्याणुव्रत (३) अचौर्याणुव्रत (४) ब्रह्मचर्याणुव्रत (५) परिग्रहपरिमाण अणुव्रत।

(क) **अहिंसाणुव्रत**—त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा का त्याग करना अहिंसा अणुव्रत कहलाता है।

दूसरे भाग में तुम पढ़ चुके हो कि प्रमाद के वश होकर अपने या दूसरे के घात करने या दिल दुखाने को हिंसा कहते हैं यह हिंसा चार प्रकार की होती है।

(१) **संकल्पी हिंसा**—उसे कहते हैं जो इरादे से की जाय, अर्थात् मांस भक्षण के लिए, धर्म के नाम पर बलि चढ़ाने के लिए, शिकार वगैरह का शौक तथा फैशन को पूरा करने के लिए जो जीवों का वध किया जाता है उसे संकल्पी हिसा कहते हैं।

(२) **उद्यमीहिंसा**—खेती व्यापार करने, कल कारखाने चलाने आदि रोजगार करने में जो हिंसा होती है उसको उद्यमी हिंसा करते हैं।

(३) **आरम्भी हिंसा**—रसोई बनाना, अन्न को कूटना तथा बुहारी देना, मकान आदि बानाना, उनको लीपना पोतना आदि में जो हिंसा होती है उसे आरम्भी हिंसा कहते हैं।

(४) **विरोधीहिंसा**—शत्रु से अपने जान माल तथा अपने देश और धर्म की रक्षा करने के लिए युद्ध आदि करने में जो हिंसा होती है उसे विरोधी हिंसा कहते हैं।

इन चारों हिंसाओं में से श्रावक केवल संकल्पी
सा का त्याग कर सकता है, स्थावर जीवों की भी
र्थ हिंसा नहीं करता है। यद्यपि बाकी तीन हिंसाओं
। सर्वथा त्याग श्रावक गृहस्थी में रहते हुए नहीं कर
कता तो भी उसको सब कार्यों के करने में यत्न और
ति से ही व्यवहार करना चाहिये। इस व्रत का धारी
वक कषाय से किसी भी प्राणी को बन्धन में नहीं डालता
ठी चाबुक आदि से नहीं मारता। किसी जीव के
क, कान, पूँछ आदि अङ्गोपांग का छेदन नहीं करता
। किसी जीव पर उसकी शक्ति से अधिक बोझा नहीं
दता। अपने अधीन मनुष्यों तथा पशुओं को भूखा
ासा नहीं रखता है। यदि वह ऐसा करता है तो उसके
त में दोष लगता है।

(ख) सत्याणुव्रत—स्थूल झूठ बोलने का त्याग
ना सत्याणुव्रत कहलाता है। इस व्रत का पालन करने
ला स्थूल (मोटा) झूठ न तो आप बोलता है न दूसरों
बुलवाता है और ऐसा सच भी नहीं बोलता है कि
ससके बोलने से किसी जीव का अथवा धर्म का घात होता
। इस व्रत का धारी झूठा उपदेश नहीं देता है। दूसरे
दोष प्रगट नहीं करता है। विश्वास घात नहीं करता है।
ठी गवाही नहीं देता है। झूठे जाली कागज तमस्सुक

रसीद आदि नहीं बनाता है, जाली हस्ताक्षर मोहर वगैरह नहीं बनाता है।

(ग) अचौर्याणुव्रत—प्रमाद के वश होकर दूसरों की बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करने का त्याग करना अचौर्याणुव्रत है। इस व्रत का धारी किसी की गिरी पड़ी भूली या रक्खी हुई वस्तु को न तो आप लेता है और न उठा कर दूसरों को देता है।

इस व्रत का धारी दूसरों को चोरी का उपाय नहीं बताता। चोरी का माल नहीं लेता। राजा के महसूल आदि की (जैसे महसूल चुङ्गी रेलवे टिकट आदि) चोरी नहीं करता। बढ़िया चीजों में घटिया मिला कर बढ़िया के मोल में नहीं बेचता। जैसे दूध में पानी मिला कर, घी में चर्बी मिला कर नहीं बेचता। नापने तोलने के गज बांट तराजू वगैरह हीनाधिक (कम या ज्यादा) नहीं रखता। यदि ऐसा करता है तो उसका व्रत दूषित हो जाता है।

(घ) ब्रह्मचर्याणुव्रत—अपनी विवाहिता स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों से काम सेवन का त्याग करना ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इस व्रत का धारी अपनी स्त्री को छोड़ कर बाकी स्त्रियों को अपनी पुत्री और बहन के समान समझता है। कभी किसी को बुरी निगाह से नहीं देखता। वह

पने आधीन कुटम्बीजनों के सिवाय दूसरों के रिश्ते ..ते नहीं करता। वेश्या तथा व्यभिचारिणी (बदचलन) स्त्रियों की संगति नहीं करता और न उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध रखता है। काम के नियत अङ्गों को छोड़कर और अङ्गों में कुचेष्टायें नहीं करता। अपनी स्त्री से भी काम सेवन की अधिक लालसा नहीं रखता है। यदि वह ऐसा करता है तो उसका व्रत मलिन होता है।

नोटः—स्त्री को भी विवाहित पुरुष में ही सन्तोष धारण करना चाहिए। अपने पति के सिवाय अन्य पुरुषों को पुत्र, भाई तथा पिता के समान समझना चाहिये। ऐसे प्रकार करने से ही पतिव्रत धर्म रूप ब्रह्मचर्य का पालन होता है। स्त्रियों को भी उन सब कारणों से बचना चाहिये जो उनके शीलव्रत को दूषित करने वाले हों।

(ङ) परिग्रह परिमाण अणुव्रत—अपनी इच्छानुसार खेत, मकान, रुपया पैसा, सोना, चांदी, गौ, बैल, घोड़ा, अनाज, दासी दास, वस्त्र, बर्तन वगैरह वस्तुओं का इस प्रकार परिमाण कर लेना कि मैं जन्म भर के लिए इतना रखूंगा, बाकी सबका त्याग कर देना परिग्रह परिमाण-अणुव्रत है। इस व्रत का धारी अपने किए हुए परिमाण का उल्लंघन नहीं करता है। किन्तु जितना परिग्रह उसने रखा है, उसमें ही सन्तुष्ट रह अधिक तृष्णा नहीं करता

(क) दिग्व्रत—लोभ के आरम्भ को कम करने के लिए जन्म भर के लिए दसों दिशाओं में आने जाने की हद बांध लेना दिग्व्रत कहलाता है। इस व्रत का धारी इस प्रकार नियम करता है कि मैं जन्म पर्यन्त अमुक दिशा में, अमुक नदी, पर्वत, नगर से आगे नहीं जाऊँगा, जैसे किसी मनुष्य ने पूर्व में कलकत्ता, पश्चिम में सिन्धुनदी उत्तर में हिमालय पर्वत और दक्षिण में कन्याकुमारी से आगे नहीं जाने का नियम लिया और फिर उसका भली भांति पालन किया। उसका यह नियम दिग्व्रत कहलाता है।

इस व्रत के धारी को चाहिए कि अपने किए नियम की मर्यादा को भली भांति याद रक्खें और लोभादिक के वश में होकर उसमें कोई घटा बढ़ी न करें।

(ख) देशव्रत—घड़ी, घण्टा, दिन, पक्ष, महीना, वर्ष तक नियत समय तक दिग्व्रत में की हुई मर्यादा को और भी घटा लेना देशव्रत है। जैसे दिग्व्रत में किसीने यह नियम किया कि जन्म भर वह पूर्व दिशा में कलकत्ते से आगे नहीं जावेगा। अब नियम करता है कि मैं चौमासे में अपने शहर से बाहर कहीं नहीं जाऊँगा। वह किसी दिन यह नियम और भी कर लेवे कि आज मैं मन्दिर में ही रहूँगा, मन्दिर से बाहर कहीं नहीं जाऊँगा, तो यह उसका

देशव्रत समझना चाहिए । इस व्रत का धारी मर्यादा से बाहर क्षेत्र में न स्वयं जाता है न किसी दूसरे को भेजता है, न वहां से कोई चीज़ खरीद मंगाता है, न भेजता है न कोई पत्र व्यवहार करता है । धर्म कार्य के लिए मनाही नहीं है ।

याद रक्खो दिग्व्रत जीवन पर्यंत होता है और देशव्रत कुछ नियत समय के लिए होता है ।

(ग) अनर्थदण्डव्रत—बिना प्रयोजन ही जिन कार्यों में पाप का आरम्भ हो, उन कार्यों का त्याग करना अनर्थ दण्डव्रत है ।

इस व्रत का धारी पाँच प्रकार के अनर्थों से अपने को बचाता है —

१—पापोपदेश—वह बिना प्रयोजन किसी को ऐसा कोई कार्य करने का उपदेश नहीं देता जिसमें पाप हो ।

२—हिंसादान—हिंसा के औजार तलवार, पिस्तौल, फावड़ा कुदाल, पींजरा, चूहेदान आदि किसी दूसरे को यश के लिए मांगे नहीं देता ।

३—अपध्यान—दूसरों का बुरा नहीं चाहता है । दूसरों की स्त्री, पुत्र, धन आजीविका आदि नष्ट होने की इच्छा नहीं करता है । दूसरे मनुष्यों तथा जानवरों की लड़ाई

देख कर खुश नहीं होता, किसी की हार जीत में आनन्द नहीं मानता।

४—दुःश्रुति—परिणामों को बिगाड़ देने वाली कहानी किस्से, नाविल, स्वांग, तमाशे नाटक वगैरह की किताबें नहीं पढ़ता और नहीं सुनता।

५—प्रमादचर्या—बिना प्रयोजन जल नहीं खिंडाता अग्नि नहीं जलाता, जमीन नहीं खोदता, वृक्ष, पत्ते, फल, फूल आदिक नहीं तोड़ता। इस व्रत के पालन करने वाले को चाहिए कि अपनी जबान से कोई झूठ वचन न कहे। शरीर से कोई कुचेष्टा न करे। व्यर्थ बकवास और फिजूल की दौड़-धूप से बचता रहे और अपनी आवश्यकता से अधिक भोग-उपभोग की सामग्री इकट्ठा न करे। यदि वह ऐसा करता है तो वह अपने नियम को मलीन करता है।

प्रश्नावली

१—गुणव्रत का लक्षण बतलाओ, गुणव्रत कितने होते हैं नाम लिखो?

२—दिग्व्रत किसे कहते हैं? दिग्व्रत तथा देशव्रत में क्या भेद है? बताओ देशव्रत का धारी अपनी मर्यादा के बाहर किसी दूसरे मनुष्य को भिजवा कर अपना कार्य कर सकता है या नहीं? और क्यों?

३—[illegible] किसे कहते हैं? वे कौन से कार्य हैं जो इस व्रत के धारी के लिये त्यागने योग्य हैं? [illegible] अपने परिवार के मनुष्यों को [illegible] या नहीं? उत्तर कारण सहित लिखो।

४—बताओ कोई मनुष्य बिना अणुव्रत के धारण किये गुणव्रत धारण कर सकता है या नहीं? और गुणव्रत का धारी अणुव्रती है या नहीं? कारण सहित उत्तर दो?

पाठ १४

श्रावक के ४ शिक्षाव्रत

शिक्षाव्रत उसे कहते हैं जिनके धारण करने से मुनि व्रत पालन करने की शिक्षा मिले।

शिक्षाव्रत चार हैं—१. सामायिक, २. प्रोषधोपवास, ३. भोगोपभोगपरिमाण, ४. अतिथि संविभाग।

१. सामयिक शिक्षाव्रत—समस्त पाप क्रियाओं को त्याग तथा सब पदार्थों से राग द्वेष छोड़ कर समता भावों के साथ नियत समय तक आत्म ध्यान करने का नाम सामायिक है।

मायिक करने की विधि—सामायिक करने वाले
चाहिए कि शांत एकांत स्थान में जाकर किसी
ुक शिला या भूमि पर पट्टा आदि बिछाकर पूर्व
उत्तर की ओर मुख करके खड़ा होवे, और दोनों हाथ
कर मस्तक लगाकर तीन बार शिरोनति करना
ुनक झुका कर नमोस्तु करना) ॐ नमः सिद्धेभ्यः
नमः सिद्धेभ्यः इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए।
सीधे खड़े होकर दोनों हाथ सीधे छोड़ देने चाहिये।
ों पाँव की एड़ियों में चार अंगुल का और सामने
पूठों में बारह अंगुल का अन्तर रहे, इसी प्रकार मस्तक
भी सीधा और नाशाग्रदृष्टि रखना चाहिए और
बार णमोकार मन्त्र का जाप करना चाहिए। इसके
उसी उत्तर या पूर्व में दोनों घुटने पृथ्वी पर लगा कर
र दोनों हाथ जोड़कर मस्तक से लगाकर और मस्तक
म में लगाकर अष्टांग नमस्कार करना चाहिए। फिर
ा होकर काल आदि का प्रमाण कर लेना चाहिए कि
छः घड़ी चार घड़ी या दो घड़ी तक या अमुक समय
सामायिक करूंगा। उतने कालतक जो परिग्रह शरी
है उतना ही ग्रहण है। इत्यादि परिग्रह तथा क्ष
आदि सम्बन्धी प्रतिज्ञा करनी चाहिए। २
दशा में बिल्कुल सीधे दोनों हाथ [illegible]

खड़े होकर नौ या तीन बार णमोकार मन्त्र का जाप
दोनों हाथ जोड़कर तीन आवर्त्त करे अर्थात् दोनों हा
को अंगुली बनाकर बाँई ओर से दाहिनी ओर को
जाते हुये तीन चक्कर करे और फिर उस अंगुली को
मस्तक से लगा कर मस्तक को झुकाना चाहिए। इस
प्रकार शेष तीन दिशाओं में भी प्रत्येक में तीन मन्त्र
जपकर तीन आवर्त्त और एक शिरोनति करना चाहिए।
इस प्रकार चारों दिशाओं में भी सब मिलाकर बारह मन्त्रों
का जाप बारह आवर्त्त और चार शिरोनति हो जाते
पश्चात् जिस दिशा में पहले खडे होकर नमस्
किया था, उसी दिशा में चाहे तो मूर्ति
स्थिर खड़े रहकर, अथवा पद्मासन या अर्द्ध पद्मा
से स्थिर बैठ कर सामायिक पाठ पढ़े। णमो
मन्त्र का जाप दे भगवत् की शांतिमय प्रतिमा त
आगे आत्मस्वरूप का विचार करे। दशलाक्षणी
तथा बारह भावना का चिन्तवन करें। इस प्रका
श्रावक को चाहिये कि वह सामायिक के काल में
मन वचन काय को इधर उधर चलायमान न होने दे।
सामायिक को उत्साह के साथ करे। और सामायिक
विधि और पाठ को चित्त की चंचलता से भूल न जा
सामायिक का काल समाप्त होने पर खड़े होकर नौ

र नौ बार णमोकार मन्त्र को जप उसी दिशा में
अष्टांग नमस्कार करे। सामायिक प्रतिमा का धारी
... दो पहर और सन्ध्याकाल में नितप्रति सामायिक
... रूप से किया करता है।

...—अध्यापक को चाहिये कि सामायिक की विधि
आवर्त शिरोनति अष्टांग नमस्कारादि करके छात्रों
को भली भांति समझा देवे।

—प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत—प्रत्येक अष्टमी और
...शी को समस्त आरम्भ तथा विषय कषाय और सर्व
...र के आहार का त्याग करके १६ प्रहर तक धर्म
...न करना प्रोषधोपवास कहलाता है। एक बार भोजन
...ना 'प्रोषध' कहलाता है और सर्वथा भोजन नहीं
...ना 'उपवास' कहलाता है दो प्रोषधों के बीच में
उपवास करना 'प्रोषधोपवास' है जैसे किसी
...को अष्टमी का प्रोषधोपवास करना है, तो सप्तमी
नवमी को एक बार भोजन करे, और अष्टमी को
...न का सर्वथा त्याग करे। उसे चाहिये कि प्रोषधोप-
के दिन पांच पापों का, गृहस्थ के कारोबार का
...ङ्गार, इत्र, तेल, फुलेल, साबुन अंजन, मंजन
... का और ताश चौसर गंजफा आदि खेलने का

सर्वथा त्याग करे, और १६ पहर तक अपना समय पूजन, स्वाध्याय, सामायिक तथा धर्मचर्चा में व्यतीत करे। यह विधि उत्तम प्रोषधोपवास की है। मध्यम प्रोषधोपवास १२ पहर का और जघन्य ८ पहर का होता है। इस व्रत के धारी श्रावक को चाहिए कि वे सब क्रियायें यत्नाचार के साथ करें और उपवास सम्बन्धी उपयोगी बातों को न भूलें। यह भी ध्यान रहे कि उपवास को बेकार समझ कर न करे, हर्ष और आनन्द के साथ करे।

३–भगोपभोग परिमाणव्रत—भोजन वस्त्रादि भोगोपभोग की वस्तुओं की मर्यादा करके बाकी सब का त्याग करना भोगोपभोग परिमाणव्रत है। जो वस्तुयें एक बार ही भोगने में आवें उन्हें भोग कहते हैं जैसे रोटी, पानी, दूध, मिठाई आदि। और जो चीजें बार-बार भोगने में आवें वह उपभोग कहलाती हैं। जैसे वस्त्र, चारपाई, मकान, सवारी आदि। जो वस्तुएँ अभक्ष्य हैं अर्थात् सेवन करने योग्य नहीं हैं उनका जीवन पर्यन्त त्याग करना चाहिये, और जो पदार्थ भक्ष्य हैं अर्थात सेवन करने योग्य हैं उनका भी त्याग घड़ी, घंटा, दिन, महीना वर्ष वगैरह की मर्यादा पूर्वक करना चाहिये।

जन्म पर्यन्त त्याग को "यम" कहते हैं और थोड़े

समय की मर्यादा को लिए हुए त्याग करना "नियम" कहलाता है। इस व्रत के धारी को चाहिये कि नित प्रति सवेरे उठते ही वह इस प्रकार का नियम कर लेवे कि आज मैं भोगोपभोग की वस्तुएं इतनी रखूंगा और उनका इतनी बार और इस प्रकार सेवन करूँगा।

इस व्रत का धारी विषयों को अच्छा नहीं समझता, पहले भोगे हुए भोगों को इच्छानुरूप याद नहीं करता। आगामी भोगों की इच्छा भी नहीं करता। वर्तमान भोगों में भी अति लालसा नहीं रखता। इस व्रत के धारी को निम्न लिखित १७ नियम विचारने चाहिये—

(१) भोजन कै-बार करूँगा।

(२) छः रसों में से कौनसा छोड़ा।

(३) पानी—भोजन के सिवाय पानी कितनी बार लूँगा।

(४) कुमकुमादि विलेपन—आज तेल, इतर फुलेल आदि लगाऊँगा या नहीं, यदि लगाऊँगा तो कौन से और कितनी बार।

(५) पुष्प—फूल सूँघूंगा या नहीं।

(६) ताम्बूल पान खाऊँगा या नहीं; यदि खाऊँगा तो कितने टुकड़े कै-बार।

(७) गानावजाना—गाना सुनूंगा या नहीं।

(८) नृत्य करूंगा व देखूंगा या नहीं।

(९) ब्रह्मचर्य पालूंगा या नहीं।

(१०) स्नान—स्नान के-बार करूंगा।

(११) वस्त्र कपड़े कितने काम में लूंगा।

(१२) आभूषण—जेवर कौन २ से पहनूंगा।

(१३) आसन—बैठने के आसन कौन २ से रखूंगा।

(१४) शय्या—सोने के आसन कौन २ से रखूंगा।

(१५) वाहन—सवारी कौन २ से रखूंगा? या नहीं।

(१६) सचित्त वस्तु-हरी आज कौन-कौन खाऊँगा।

(१७) वस्तु संख्या--कितनी सब वस्तुएं खाऊंगा या छोड़ूंगा।

४—अतिथि संविभागव्रत--फल की इच्छा के बिना भक्ति और आदर के साथ धर्म बुद्धि से मुनि, त्यागी तथा अन्य धर्मात्मा पुरुषों को आहार, औषधि, ज्ञान और अभय चार प्रकार का दान देना अतिथि संविभागव्रत कहलाता है। जो भिक्षा के लिए भ्रमण करते हैं, ऐसे साधुओं को **अतिथि** कहते हैं। अपने कुटुम्ब के लिये बनाये हुए भोजन में से भाग करके देना **संविभाग** है।

यदि मुनि त्यागी आदि-दान के पात्र न मिलें तो

किसी भी सहधर्मी भाई को आदर-पूर्वक दान देवें अथवा करुणा बुद्धि से दीन-दुखी, अपाहिज भिखारियों को भोजन, वस्त्र, औषधि आदि यथाशक्ति दान देवें। श्रावकों को उचित है कि भोजन करने से पहिले कुछ न कुछ दान अवश्य ही करें। यदि और कोई दान बन सके तो अपने भोजन में से कम से कम एक दो रोटी निकालकर दुखित भूखे मनुष्यों को तथा पशुओं को दे दें। किसी का आदर सत्कार, विनय करना, योग्य स्थान देना, कुशल पूछना, मीठे वचन बोलना एक प्रकार का बड़ा दान है। दान नाम त्याग का भी है। खोटे भाव, परनिन्दा, चुगली, विकथा तथा कषायों और अन्याय के धन का त्याग करना भी महादान है। बड़ के बीज की तरह भक्ति सहित पात्र को दिया हुआ थोड़ा भी दान महान फल को देता है, दानी को इस लोक में यश और परलोक में परम सुख की प्राप्ति होती है। दानी के शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। इस व्रत के धारी को चाहिए कि क्रोधित होकर अनादर से दान न देवे। दान देकर दुःखी न हो, हर्ष-भाव के साथ दान देवे, दान देकर गर्व न करे तथा दान के फल की इच्छा न करे।

प्रश्नावली

१—शिक्षाव्रत किसे कहते हैं? और ये कितने होते हैं?

समता और उदारता का यह, कैसा सुगम विधान ॥ध०।४॥
अन्धी श्रद्धा का ही जग में, देख राज्य बलवान।
कहा 'न मानो बिना युक्ति के, कोई वचन प्रमाण' ॥ध०।५॥

प्रश्नावली

१—इस कविता में किस की स्तुति की गई है?

२—भगवान महावीर के उपदेशों को एक संक्षिप्त निबंध में लिखो।

पाठ १६

भगवान

भगवान् महावीर चौबीस तीर्थंकरों में से अन्तिम तीर्थंकर थे। इनके पहले तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जी हुए हैं। उनका बालजीवन सत्य धर्म—का पाठ सिखाने के लिए अनुपम है।

तीर्थंकर उस मनुष्य को कहते हैं जिसने इन्द्री और मन को जीत कर सर्वज्ञ पद पा लिया हो। ज्ञान के द्वारा जो सब ही भटकते हुए जीवों को संसाररूपी महासागर से पार लगाने में सहायक हो। इस प्रकार सब ही तीर्थंकर लोक का सच्चा उपकार करने वाले महान शिक्षक थे। इनमें सबसे पहले ऋषभदेव हुए। उनके बाद बड़े-बड़े लम्बे

थोड़े समयों के बाद क्रमशः तेईस तीर्थंकर और हुए। इनमें चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर जी की बाबत बालको! तुम पहले ही पढ़ चुके हो।

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण से ढाई सौ वर्ष पहले श्री पार्श्वनाथ जी निर्वाण पधारे। इनके पिता राजा विश्वसेन बनारस में राज्य करते थे। इनकी माता महिपाल नगर के राजा की पुत्री थी। उनका नाम वामा देवी था। राजकुमार पार्श्वनाथ बड़े पुण्यशाली जीव थे। वह बचपन से ही गहन ज्ञान की बातें करते थे। लोग उनके चातुर्य को देखकर दंग रह जाते थे।

एक रोज राजकुमार पार्श्वनाथ वन-विहार के लिए निकले। सखा साथी उनके साथ थे। घूमते फिरते वे एक पेड़ के पास से निकले, जिस पर एक सन्यासी उल्टा लटक पंचाग्नि तप कर रहा था। यह उनके नाना थे। राजकुमार उनकी मूढ़ क्रिया को देखकर हँसे और साथियों से बोले देखो इस मूढ़ सन्यासी को! यह जीव हत्या करके स्वर्ग के सुखों की अभिलाषा कर रहा है, जिस लक्कड़ को इसने सुलगा रक्खा है, उसमें नाग नागिनी हैं, यह भी इसको पता नहीं है।

सन्यासी इस बात को सुनकर आग बबूला हो गया और बोला—'हाँ-हाँ तू बड़ा ज्ञानी है। छोटे मुँह बड़ी

बातें कहते हुए तुझे डर भी नहीं लगता, तिस पर भी तेरा नाना और सन्यासी। इस मेरी तपस्या को तू हत्या का काम बताता है।'

राजकुमार पार्श्वनाथ ने सन्यासी की इन बातों का बुरा न माना बल्कि उन्होंने उत्तर में कहा साधु होकर क्रोध क्यों करते हो? बुद्धि उम्र के साथ नहीं बिकी है। ज्ञान बिना कोई भी करनी काम की नहीं। तुम्हें अपनी तपस्या का बड़ा घमण्ड है तो जरा इस लक्कड़ को फाड़ कर देखो। दो निरपराध जीवों के प्राण जायेंगे। क्या यही धर्म कर्म है, सन्यासी बोला तो कुछ नहीं, पर लक्कड़ चीरने पर जुट पड़ा। उसने देखा सचमुच उस लक्कड़ के भीतर सांपों का एक जोड़ा है। वह दंग रह गया, परन्तु अपने बड़प्पन की डींग मारता ही रहा। वे युगल नाग शस्त्र से घायल हो गये, परन्तु उनके परिणामों में भगवान् पार्श्वनाथ के वचनों ने शान्ति उत्पन्न कर दी थी, वे समता भाव से मर कर धरणेन्द्र पद्मावती पैदा हुए। एक बार अयोध्या से एक दूत राजा विश्वसैन की सभा में आया। पार्श्वनाथने अयोध्या का हाल पूछा तो उसने ऋषभ आदि तीर्थंकरों का चरित्र सुनाया, सुनते ही प्रभु को ध्यान आया और वे वैराग्यवान हो गये। बिना विवाह कराये ही तीस वर्ष की अवस्थामें साधु दीक्षा ले ली; और घोर तप करने लगे

एक बार कमठ के जीव पूर्व जन्म के बैरी देव ने घोर उपद्रव किया। वृष्टि की, ओले बरसाये, सर्प लिपटाये, परन्तु भगवान सुमेरु पर्वतवत् ध्यान में स्थिर रहे। युगल नाग के जीवों में से धरणेन्द्र ने सर्प के रूप में छाया की, पद्मावती ने मस्तक पर उठा लिया उपसर्ग दूर हुआ। भगवान् को केवलज्ञान हुआ। केवलज्ञान होने के बाद भगवान् ने विहार करके धर्मोपदेश दिया। अनेक जीवों का उपकार किया। सौ वर्ष की आयु में हजारीबाग जिले के सम्मेद शिखर पर्वत से मोक्ष पधारे। इसी कारण इस पर्वत को आज कल पार्श्वनाथ हिल (पहाड़) कहते हैं।

पाठ १७

सती अञ्जना सुन्दरी

सती अञ्जना सुन्दरी महेन्द्रपुर के राजा महेन्द्र व रानी हृदयवेगा की परम प्यारी पुत्री थी। बालकपन में ही वह सब विद्याओं और कलाओं में निपुण हो गई थी। इसको धर्मशास्त्र की शिक्षा भी पूर्णरूप से दी गई थी। युवती होने पर माता पिता ने उसका सम्बन्ध आदित्यपुर के राजा प्रह्लाद, रानी केतुमती के पुत्र पवनकुमार के साथ निश्चय कर दिया।

पवनकुमार ने अञ्जना के रूप गुण और शिक्षा की बड़ी प्रशंसा सुनी उससे मिलने की इच्छा से वे एक रात्रि को अपने मित्र के साथ विमान द्वारा महेन्द्रपुर को रवाना हुए। जिस समय वे महेन्द्रपुर पहुँचे, अञ्जना सुन्दरी अपने महल के ऊपर सखियों के साथ बैठी हुई अपना मनोरञ्जन कर रही थी। पवन कुमार छिपकर उसकी गुप्तवार्ता सुनने

पाकर बड़े दुखी हुए। जब पता लगा कि वह अपने पिता के यहां महेन्द्रपुर गई है तो वे वहां पहुँचे। परन्तु जब वहां भी परम सती अंजना के दर्शन न हुए, तो वनों में उसकी खोज में पागलों की तरह घूमने लगे। अब तो राजा महेंद्र को भी यह हाल जान कर बड़ा दुःख हुआ। दोनों ओर से पवनकुमार और अञ्जना की खोज में दूत भेजे गये। उनमें से एक दूत राजा प्रतिसूर्य के पास पहुंचा और कुमार का सब हाल कह सुनाया। अञ्जना यह हाल सुन कर मूर्छित हो गई। राजा प्रति सूर्य ने उसे समझाया और आप आदित्यपुर आये। वहां से राजा प्रह्लाद को लेकर कुमार की खोज में निकले। खोजते-खोजते कुमार को एक भयानक वन में वृक्ष के नीचे बैठा देखा। कुमार की बड़ी शोचनीय दशा थी। कुमार को देखते ही राजा प्रहलाद के हृदय में प्रेम उमड़ आया, दौड़ कर जल्दी से उसे हृदय से लगा लिया। तथा अञ्जना के मिलने का व उसके प्रतापी पुत्र होने का सब समार कह सुनाया। कुमार यह समाचार सुन कर बहुत प्रसन्न हुए।

वहां से चल कर वे सब राजा प्रतिसूर्य के यहाँ हनुरुहद्वीप आये। पवन कुमार अपनी प्राणप्यारी अञ्जना से मिले। दोनों ने अपने-अपने दुःख एक दूसरे को सुना कर दिल को शान्त किया। और कुछ दिनों तक वहां ही

(१) जीव (२) अजीव (३) आस्रव (४) बन्ध (५)
र (६) निर्जरा (७) मोक्ष।

(१) जीव—उसे कहते हैं जिसमें चेतना अर्थात्
ने जानने की शक्ति पाई जावे। जीव प्राणों से जीते
प्राण दो प्रकार के होते हैं भावप्राण और द्रव्यप्राण

भावप्राण—ज्ञान और दर्शन, सुख, वीर्यादि आत्मा
गुण हैं।

द्रव्यप्राण—दश होते हैं।

५ इन्द्रियाँ—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण।

३ बल—मनोबल, वचनबल, कायबल।

२ आयु और श्वासोच्छ्वास।

नोट—मुक्त जीवों में केवल भावप्राण, ज्ञान और दर्शन
वीर्य आदि ही पूर्ण रूप से पाये जाते हैं, पर संसारी
ों में किन्हीं अंशों में ज्ञान दर्शन होते हुए द्रव्यप्राण
पाये जाते हैं।

(२) अजीव—उसे कहते हैं जिसमें चेतना न
जावे। अजीव के पाँच भेद हैं—

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, (इनका स्वरूप
रे पाठ में बताया जा चुका है।)

३—पति की रुष्टावस्था में अंजना ने क्या किया ? और उसकी क्या हालत हुई ?

४—पवनकुमार मानसरोवर क्यों गये थे ? तथा किस प्रकार उनको अपनी २२ वर्ष की छोड़ी हुई पत्नी की सुध आ गई ?

५—सास ने अंजना को क्या कलंक लगाया तथा उसे कहाँ भिजवा दिया ? वन में अंजना ने क्या २ कष्ट उठाये तथा किस प्रकार अंजना अपने मामा के घर पहुँची ?

६—बताओ फिर किस प्रकार अंजना और पवनकुमार का संयोग हुआ ?

७—अंजना को अपने पति से २२ वर्ष का लम्बा वियोग क्यों सहना पड़ा था ?

८—अंजना की कहानी से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

तत्त्व और पदार्थ

पाठ १८

जिनके जानने से हमें अपने आत्मा के सच्चे हित का ज्ञान हो सके, हम अपने आत्मा को पवित्र कर सकें उन बातों को, या **वस्तु के स्वभाव को "तत्त्व"** कहते हैं। जिसमें तत्त्व पाया जावे उसी को **"पदार्थ"** कहते हैं। आत्मा की उन्नति को समझाने के लिए सात तत्त्वों को जानना आवश्यक है। वे सात तत्त्व ये हैं—

(१) जीव (२) अजीव (३) आस्रव (४) बन्ध (५) संवर (६) निर्जरा (७) मोक्ष।

(१) जीव—उसे कहते हैं जिसमें चेतना अर्थात् देखने जानने की शक्ति पाई जावे। जीव प्राणों से जीते हैं। प्राण दो प्रकार के होते हैं भावप्राण और द्रव्यप्राण

भावप्राण—ज्ञान और दर्शन, सुख, वीर्यादि आत्मा के गुण हैं।

द्रव्यप्राण—दश होते हैं।

५ इन्द्रियाँ—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण।

३ बल—मनोबल, वचनबल, कायबल।

२ आयु और श्वासोच्छ्वास।

नोट—मुक्त जीवों में केवल भावप्राण, ज्ञान और दर्शन सुख वीर्य आदि ही पूर्ण रूप से पाये जाते हैं, पर संसारी जीवों में किन्हीं अंशों में ज्ञान दर्शन होते हुए द्रव्यप्राण भी पाये जाते हैं।

(२) अजीव—उसे कहते हैं जिसमें चेतना न पाई जावे। अजीव के पाँच भेद हैं—

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, [illegible] स्वरूप तीसरे पाठ में बताया जा चुका

(३) आस्रव—रागद्वेष आदि भावों के कारण पुद्-गल कर्मों का खिंचकर आत्मा की ओर आना आस्रव है। जैसे किसी नाव में छेद हो जाने पर पानी आने लगता है, वैसे ही आत्मा के शुभ अशुभ रूप भाव होने पर पुद्-गल कर्म खिंचकर आत्मा की ओर आते हैं।
(१)मिथ्यात्व (२) अवरति, (३) कषाय और (४) योग ही आस्रव के मुख्य कारण हैं।

मिथ्यात्व—राग द्वेष रहित अपनी शुद्ध परम पवित्र आत्मा के अनुभवों में श्रद्धान करने का नाम सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व आत्मा का निज भाव है। इस सम्यक्त्व के विपरीत अर्थात् उल्टे भाव को ही मिथ्यात्व कहते हैं। इस मिथ्यात्वभाव के कारण संसारी जीवों के अनेक संकल्प विकल्प हुआ करते हैं। यह मिथ्यात्व ही जीव के शांति स्वभाव का नाश करता है और इसी से यह जीव के कर्म बन्ध का कारण है। मिथ्यात्व पाँच प्रकार का है:—एकान्त मिथ्यात्व, विपरीत मिथ्यात्व, विनय मिथ्यात्व, संशय मिथ्यात्व, अज्ञान मिथ्यात्व।

(आ) अवरति—आत्मा का अपने शुद्ध चिदानंदमय स्वभाव से विमुख होकर बाहरी विषयों में लवलीन होना अविरति है। पाँचों इन्द्रियों और मन को वश में नहीं

रोकना और छः काय के जीवों की रक्षा न करके उनकी हिंसा करना अविरति है। अविरति बारह प्रकार की है।

(४) कषाय—जो आत्मा को कषे अर्थात् दुःख दे, वह कषाय है। जैसे क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, शोकादि ये कषाय पच्चीस होते हैं।

अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ (चार) ४
अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ (चार) ४
प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ (चार) ४
संज्वलन क्रोध मान मान माया लोभ (चार) ४

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद
९
नपुंसकवेद, (९ कषाय) इस प्रकार १६ कषाय और ९ नो कषाय मिलकर कषाय के कुल पच्चीस भेद होते हैं।

(५) योग—मन, वचन, काय की क्रिया द्वारा आत्मा में हलन चलन होना योग कहलाता है। आत्मा में हलन चलन होने से कर्मों का आस्रव होता है। योग के मन, वचन, काय रूप मुख्य तीन भेद हैं। इसके विशेष भेद १५ होते हैं। ४ मनोयोग, ४ वचन योग, और ७ काययोग।

(१) सत्य मनोयोग (२) असत्य मनोयोग (३) उभय

(६) **निर्जरा तत्व**—आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मों का थोड़ा-थोड़ा करके आत्मा से जुदा होना निर्जरा है। जैसे नाव में छिद्र के द्वारा आकर जो पानी भर गया था, उसको थोड़ा २ करके बाहर निकाल दिया जावे। वैसे ही आत्मा के साथ बँधे हुए कर्मों को धीरे २ तपश्चरण द्वारा आत्मा से जुदा कर दिया जाता है। आत्मा के जिस परिणाम से पुद्गल कर्म फल देकर नष्ट हो जाते हैं, वह भाव **निर्जरा** है। समय पाकर या तपश्चरण द्वारा कर्म-रूप पुद्गल का आत्मा से झड़ना **द्रव्य निर्जरा** है।

फल देकर अपने समय पर कर्म का आत्मा से जुदा होना **सविपाक निर्जरा** है।

(७) **मोक्ष तत्व**—सब कर्मों का नष्ट होकर आत्मा के शुद्ध होने का नाम मोक्ष है।

जैसे नाव के अन्दर भरा हुआ सब पानी बिल्कुल निकाल कर नाव को साफ कर दिया जाता है, वैसे ही सब कर्मों से सर्वथा रहित होने पर आत्मा शुद्ध परमात्मा स्वरूप होता है। आत्मा का शुद्ध परिणाम जो सर्व पुद्गल कर्मों के नाश का कारण होता है वह **भाव मोक्ष** है। आत्मा से सर्वथा द्रव्य कर्मों का जो दूर होना है वह द्रव्य **मोक्ष** है।

पदार्थ

इनही ऊपर बताये हुए सात तत्वों में पुण्य और पाप मिलाने से ही नौ पदार्थ कहलाते हैं ।

पुण्य—उसे कहते हैं जिसके उदय से जीवों को सुख देने वाली सामग्री मिले । जैसे किसी को व्यापार में खूब लाभ होना, घर में सुपुत्र का होना, उच्च पद का प्राप्त होना ये सब पुण्य के उदय से होते हैं ।

परोपकार करना, दान देना, भगवान का पूजन करना, ज्ञान का प्रचार करना, धर्म का पालन करना आदि शुभ कार्यों से पुण्य का बन्ध होता है ।

पाप—जिसके उदय से जीवों को दुख देने वाली चीजें मिलें । जैसे रोगी हो जाना, पुत्र का मर जाना, धन चोरी चला जाना इत्यादि यह सब पाप के उदय से होते हैं । हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, जुआ खेलना, दूसरों की निन्दा करना, दूसरों का बुरा चाहना आदि बुरे कार्यों से पाप का बन्ध होता है ।

प्रश्नावली

१—तत्व किसे कहते हैं ? और कितने होते हैं ?

२—(अ) प्राण कितने प्रकार के होते हैं ? बताओ मुक्त जीवों के कौन से प्राण होते हैं और संसारी जीवों के कौन-कौन से प्राण होते हैं ?

(आ) नीचे लिखों में कितने और कौन से प्राण पाये जाते हैं ? स्त्री, देव, नारकी, कुर्सी, इंजन, चिड़िया, वृक्ष, चींवटी, मक्खी, लड़का, लट ?

३—बताओ सातों तत्वों में कौन कौन से तत्व ग्रहण करने के योग्य और कौन से तत्व दूर करने के योग्य हैं ? मोक्ष, संवर, निर्जरा, आस्रव इन तत्व को क्रम वार लिखो। और इनका स्वरूप दृष्टान्त सहित समझाओ ?

४—संक्षिप्ततया बताओ कि तीसरे तत्व के कितने व कौन से मुख्य कारण हैं ? मिथ्यात्व और अवरति के लक्षण लिख कर १५ योगों के नाम लिखो।

५—बन्ध किसे कहते हैं ? और यह कितने प्रकार का है ? बन्ध और आस्रव में क्या भेद है ?

६—संवर तत्व के मुख्य कारणों को लिखो। अनुप्रेक्षा या भावना में क्या भेद है ? निम्नलिखित के लक्षण लिखो अन्यत्व भावना, निर्जरा भावना, संसार भावना, लोक भावना, धर्म भावना।

७—चारित्र किसे कहते हैं ? ये कितने होते हैं ? नाम लिखो।

८—पदार्थ कितने व कौन-कौन से होते हैं ? कौन २ से कार्य से पुण्य और किनसे पाप का बंध होता है ?

(क) परीषह किसे कहते हैं? परीषह कितनी हैं और उनको कौन सहन करते है और क्यों?

(ख) नीचे लिखी परीषहों का स्वरूप बताओः—

आक्रोशपरीषह, याचनापरीषह, अलाभपरीषह, सत्कार तिरस्कार परीषह चर्या परीषह।

—(क) नीचे लिखे साधुओं ने कौन सी परीषह सही?

ऋषभदेव स्वामी को आहार के लिए जाने पर भी आहार न मिला, छह महीने तक बराबर अंतराय रहा।

(ख) आनन्द स्वामी जब वन में ध्यानारूढ़ खड़े थे तो सिंह ने उनके शरीर को विदारा।

(ग) राजा श्रेणिक ने यशोधर स्वामी के गले में मरा हुआ साँप डाल दिया, उससे चिंवटियाँ उनके शरीर पर चढ़ गईं और उन्हें बड़ा कष्ट दिया।

(घ) श्री मानतुङ्गाचार्य को राजा भोज ने जेल में डलवा दिया?

(ङ) सनत्कुमार मुनि को कुष्ठ हो गया बड़ी पीड़ा हुई—वैद्य मिलने पर भी उन्होंने इलाज की इच्छा प्रकट नहीं की।

(च) सूर्यमित्र मुनि वायुभूति को संबोधन के लिये उसके घर गये। वायुभूति ने उनको बहुत कुछ बुरा भला कहा—उन्होंने सर्व शान्ति से सहन कर लिया।

(छ) एक मुनि कड़ी धूप में खड़े हैं, कई दिन से आहार नहीं लिया है, प्यास के मारे गला सूख रहा है, शरीर पर

पसीने के कारण देह जल गया है आँख में तिनका गिर पड़ा है—कष्ट बिना खेद सहन कर रहे हैं ?

एक समय में अधिक से अधिक कितनी परीषह हो सकती हैं ?

११—नीचे लिखे कामों से पुण्य होगा या पाप—छात्रों को छात्रवृत्ति देने से, लंगड़े, लूले, अपाहिज आदमियों को रोटी खिलाने से, जुआरी तथा शराबी को रुपया-पैसा दान देने से, मैंढा, तीतर लड़ाने से, प्याऊ और सदाव्रत लगाने से, छोटी उम्र या बुढ़ापे में शादी करने-कराने से, विवाह-शादियों में व्यर्थ व्यय करने से, औषधालय तथा कन्या पाठशाला खुलवाने से, टूटे-फूटे मन्दिरों का जीर्णोद्धार करने से, चोरी करने से, शिकार खेलने से, बद-चलनी करने से, सिगरेट-बीड़ी पीने से, लड़के-लड़कियों को बेचने से या काज करने से।

पाठ १६

विद्यार्थी का कर्तव्य

प्यारे बालकों ! इस पाठ में हम तुम्हें यह बतलाना चाहते हैं कि एक विद्यार्थी का क्या कर्त्तव्य है। वैसे तो कर्त्तव्य बहुत से होते हैं, परन्तु हम नीचे कुछ मोटे मोटे कर्त्तव्यों की ओर तुम्हारा ध्यान दिलाना चाहते हैं, जिनका पालन करके तुम अपना जीवन सुधार सकते हो।

स्वास्थ्य

सदा निरोग रहने का यत्न करो। अपने स्वास्थ्य रक्षा की ओर अधिक ध्यान दो। यदि किसी का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, तो वह किसी काम का नहीं रहता है। स्वास्थ्य पुरुष का चित्त प्रसन्न रहता है, उसके शरीर में चुस्ती रहती है। स्वास्थ्य पुरुष का मन अपने आप काम करने को चाहता है। स्वाथ्य का ब्रह्मचर्य, व्यायाम, खानपान की शुद्धि से गहरा सम्बन्ध है।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य एक प्रकार का तप है। विद्यार्थियों के लिए ब्रह्मचारी रहकर विद्या पढ़ना आवश्यक है। विद्यार्थी होते हुए अपने मन को कभी किसी विषय-वासना की ओर मत जाने दो। सत्य, सन्तोष, क्षमा, दया, प्रेम आदि गुण ब्रह्मचारियों के लिए बड़े ही सुलभ हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य के लिए धन की, न समय की और न खास स्थान की ही आवश्यकता है। आवश्यकता है तो एक दृढ़ प्रतिज्ञा की। इसलिए जब तक विद्यार्थी हो ब्रह्मचर्य का नियम लो। उत्तम रीति से उसका पालन करो। फिर तुम कुछ दिनों में इसके मीठे फल को भी चखोगे।

मित्रता

अपने मित्र से प्रेम रक्खो । मित्र जीवन भर का साथी होता है । किसी को मित्र बनाने से पहले उसकी खूब परख कर लेनी चाहिए, नहीं तो फिर पीछे पछताना पड़ता है । यदि मित्र कपटी हो तो उससे सुख के बदले अनेक दुःख मिलते हैं ।

समय

बालको ! सदा समय की कदर करो । समय एक बहुमूल्य पदार्थ है । बहुत से लड़के अपने समय को आलस्य में खो देते हैं । बहुत से व्यर्थ की बातों में नष्ट कर डालते हैं । यह ठीक नहीं है । जो विद्यार्थी समय पर अपनी पढ़ाई-लिखाई वगैरह का काम नहीं करते हैं, उनको पीछे पछताना पड़ता है, परीक्षा के समय वे फेल हो जाते हैं । इसलिए हर काम समय पर करो । एक समय विभाग बना लो । जिस काम के लिए जो समय रक्खो उसे उस समय में ही कर डालो । धर्म के समय में धर्म का पालन करो । पढ़ने के समय खूब पढ़ो । खेलने के समय खूब उत्साह के साथ खेलो । समय पर पाठशाला जाओ । ... । आज का काम कल पर मत छोड़ो । ऐसा समय सो कि पहले जरूरी २ कार्यों को करो । एक

समय में एक ही कार्य करो। जिस काम को हाथ में लो उसे पूरा करके छोड़ो, अधूरा न रहने दो। रात्रि को सोते समय विचार लो कोई काम रह तो नहीं गया।

परिश्रम

जो काम तुम्हें करना हो परिश्रम के साथ करो। जो कुछ पढ़ो मन लगा कर पढ़ो। किसी बात को एक बार न समझ सको तो उसे दूसरी बार समझने का यत्न करो। पढ़ने में खूब परिश्रम करो। परिश्रम करने से मोटी बुद्धि वाले भी बड़े विद्वान हो जाया करते हैं। यदि तुम्हें कोई कार्य कठिन मालूम हो तो उसे घबड़ा कर न छोड़ दो। साहस छोड़कर न बैठ जाओ। परिश्रम करके उस कार्य को पूरा करके छोड़ो। जो भी कार्य करो उसे उत्साह से करो। परिश्रमी और साहसी बालकों का हर समय मान होता है। जो अपने पैरों पर खड़ा रह कर शौर्यता के साथ साहस-पूर्वक कार्य करता है उसी की जय होती है और वही वीर कहलाता है।

आत्म-गौरव

सदा अपने देश, जाति, कुल तथा धर्म मर्यादा का पालन करते रहो। इनकी प्रतिष्ठा रखना ही आत्म-गौरव है। आत्म गौरव रखने के लिए विद्या, क्षमा, परोपकार,

विनय आदि गुणों की बड़ी आवश्यकता है। कभी भी कोई कार्य ऐसा न करो कि जिस से तुम्हारे धर्म पर दोष लगे। तुम्हारे देश, तुम्हारी जाति, तुम्हारे कुल तथा तुम्हारी पाठशाला की प्रतिष्ठा भंग हो। जहाँ तक तुम से बन सके उनकी सेवा करो, कि जिस से उनकी प्रतिष्ठा संसार में सदा उज्ज्वल बनी रहे।

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं नर-पशु निरा है और मृतक समान है॥"

भावनाएँ

सदा अपने दिल में यह भावना करो, कि मेरी आत्मा में किसी समय भी खोटे भाव न हों। मेरे यह भाव रहें कि जगत के सब जीवों का भला हो, सब ही जीव मेरे समान हैं। गुणवानों को देखकर मेरे हृदय में ऐसी खुशी हो कि जैसे किसी रंक को चिन्तामणि रत्न के मिलने से प्राप्त होती है। मेरी यह अभिलाषा है कि दीन-दुखी जीवों पर मेरे हृदय में दया उत्पन्न हो। उनको देखकर मेरा चित्त काँप उठे और मेरा यह दृढ़ विचार हो जावे कि जिस तरह भी बने उनके दुःख दूर करने का प्रयत्न करूँ।

मेरी यह भावना है जो पाखण्डी तथा अधर्मी हैं, दुष्ट हैं जो भलाई के बदले बुराई करते हैं, अथवा जो मेरा आदर

तथा सत्कार नहीं करते हैं, मैं उनसे राग करूँ न द्वेष। प्यारे बालको! इस सब कथन का सारांश यह है कि सदा अपने मन और शरीर को पवित्र रक्खो। विषय-वासनाओं का त्याग करो। स्वार्थ-बुद्धि को हटाओ। तुम में जो दोष हैं, उन्हें दूर करने का संकल्प करो, तथा गुणों को बढ़ाने में प्रयत्नशील बनो। ऐसा करने से अवश्य ही तुम्हारा जीवन सुन्दर, उदार, सुखी और शांत बन जावेगा।

प्रश्नावली

१—विद्यार्थी किसे कहते हैं? विद्यार्थी के कौन २ से कर्त्तव्य हैं?

२—स्वास्थ्य किसे कहते हैं और इसको प्राप्त करने के लिए कौन कौन सी बातों पर तुम ध्यान दोगे?

३—व्यायाम किसे कहते हैं? और व्यायाम करने से क्या लाभ हैं? बताओ ऐसे कौन से व्यायाम हैं जो लड़कियों के लिए उचित समझे जा सकते हैं?

४—विनय किसे कहते हैं? तुम अपने माता-पिता गुरु और सह-पाठियों तथा अपने से नीची कक्षाओं के छात्रों के प्रति इस गुण का किस प्रकार पालन करोगे?

५—मित्रता करने से प्रथम क्या ख्याल रखना चाहिए? समय का आदर क्यों करना चाहिए और अपना समय किस प्रकार व्यतीत करना चाहिए?

६—संसार में ऐसी कौन सी शक्ति है जिस से मनुष्य प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है? 'आत्म गौरव' का क्या अभिप्राय है? तुम्हें अपने दिल में कौन सी भावनायें लानी चाहिए?

समय कोई धर्म से डिगता हो तो वह उसे सहायता देकर धर्म में दृढ़ करता है और यथा शक्ति उनका उपकार करता है तथा सच्चे ज्ञान का प्रकाश कर धर्म की प्रभावना करता है। धर्मात्माओंके साथ गऊ बच्छे कीसी प्रीति करता है।

भूल कर भी अपनी जाति, कुल, धन, बल, रूप, अधिकार, विद्या और तप का गर्व नहीं करता। निरभिमानी और मन्दकषाय रहता है। वह कुगुरु कुदेव को वन्दना नहीं करता तथा पीपल पूजना, कलम दवात तथा रुपये-पैसे का पूजना आदि लोक-मूढ़ता नहीं करता। कुगुरु कुदेव, कुशास्त्र व इनके भक्त-जनों की प्रशंसा तथा संगति इस प्रकार नहीं करता, जिससे उसके सम्यग्दर्शन में दोष लगे। इस प्रकार सब प्राणियों से प्रेम रखते हुए वह अपने श्रद्धान की रक्षा करता है।

(२) व्रत प्रतिमा—५ अणुव्रत-अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह परिमाण।
३ गुणव्रत-दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदंडव्रत।
४ शिक्षाव्रत-सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण, अतिथि संविभाग। इन बारह व्रतों का निरतिचार पालन करना व्रत प्रतिमा है। इस प्रतिमा का धारी व्रती श्रावक कहलाता है। वह अपने व्रतों में कोई अतिचार नहीं लगाता।

साथ खेती करता था। वह बहुत पराक्रमी था। उसने बाण विद्या में अच्छी निपुणता प्राप्त कर ली थी। उनका नैपुण्य और पराक्रम देख कर श्रीदत्त सेठ ने अपनी पुत्री के साथ उनका विवाह कर दिया। विवाह के पश्चात् वीरमती और विमलशाह पुनः पाटन में रहने लगे।

एक बार पाटन में राजा की ओर से वीरोत्सव हो रहा था। विमल ने वहाँ बाण-विद्या के अनेक अद्भुत पराक्रम दिखलाये, तब भीमदेव राजा ने प्रसन्न होकर विमलशाह को दण्डनायक बनाया।

विमलशाह एक सफल सेनापति हुआ। उसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करके कीर्ति बढ़ाई थी। यह देखकर राज्याधिकारी बड़े कुढ़ने लगे और उसे मारने के अनेक प्रयत्न किये। विमलशाह के विरुद्ध राजा के भी कान भर दिये गये। एक बार एक सिंह छोड़ कर विमलशाह से पकड़ने को कहा गया। विमलशाह ने बड़ी ही वीरता से सिंह को पकड़ कर पिंजरे में बन्द कर दिया।

एक बार मल्लयुद्ध में भी विमलशाह विजयी हुए। तब मन्त्री तथा अधिकारियों ने कहा कि विमलशाह के बाप दादा ने राज का ऋण लिया था वह अभी तक अदा नहीं हुआ है। विमलशाह यह असत्य आरोप सुनकर

राज्यसभा में से चले गये और चुनौती दी कि राज्य से जो हो सके कर लेवे।

एक बार चन्द्रावति के उद्धत राजा धंधुक पर भीमदेव को विजय प्राप्त करने की सूझी, परन्तु इसके लिए विमल-शाह के सिवाय अन्य कोई वीर दिखाई नहीं दिया, तब राजा भीमदेव ने पुनः विमलशाह को मान-पूर्वक बुलाया और राजा धंधुक के साथ युद्ध करने को कहा।

वीर विमलशाह ने देशभक्ति से प्रेरित होकर यह कार्य अपने हाथ में लिया और धंधुक पर चढ़ाई कर दी। धंधुक अपने प्राण बचाकर भागा। विमलशाह ने भीमदेव की जय घोषणा की और स्वामी-भक्ति का प्रदर्शन करते हुए सोलंकी राज्य का झण्डा फहरा दिया। उसके पश्चात् विमलशाह चन्द्रावति में ही रहने लगे, और नगर की बहुत सुन्दर रचना की।

इसके पश्चात् इसी रणवीर ने आबू पर्वत पर अठा-रह करोड़ तीस लाख रुपया खर्च करके जैन मन्दिर बनवाये जो आज विमलशाह की विमल कीर्ति का स्मरण दिला रहे हैं और जैन समाज का गौरव और यश संसार भर में उज्ज्वल कर रहे हैं।

इस प्रकार विमलशाह वीर होने के साथ एक ही बड़े महान् धर्मात्मा भी थे। वे सिंह जैसे पराक्रमी और बलवान थे, परन्तु उनमें सिंह जैसी क्रूरता नहीं थी।

प्यारे बालको! तुम भी वीर विमलशाह की भांति अपने पूर्ण बल और पौरुष को बढ़ाओ और अद्भुत लौकिक तथा परमार्थिक कामों को करने के लिए अपने को वीर, साहसी बनाओ।

प्रश्नावली

१—वीर विमलशाह कौन थे?

२—उनकी वीरता और पराक्रम के कारनामे सुनाओ।

पाठ २३

वीराङ्गिनी

सीता, सावित्री, दमयन्ती,
मैना सुन्दरी, द्रौपदि, कुन्ती।
यह सब धर्म प्राण महिलायें,
जन्मी भारत में गुणवन्ती॥
दुर्गा जीजी लक्ष्मी बाई,
रण में शस्त्र कला दर्शाई॥

अपने बल कौशल के द्वारा,
दुश्मन की छाती दहलाई ॥
तुमहो वीराङ्गिनि सन्तानें,
आगे बढ़ना सीना तानें ॥
तुम में भी वह शौर्य भरा हो,
विश्व तुम्हारा लोहा मानें ॥
उन्नत पथ पर बढ़ती जाना,
संकट से न कभी घबराना ॥
सहन शीलता तथा धैर्य का,
जग में जय झंडा फहराना ॥

प्रश्नावली

१—सीता, सावित्री, दमयन्ति, मैना सुन्दरि, द्रौपदि तथा कुन्ती के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?

२—दुर्गा, जीजी और लक्ष्मी बाई कौन थी ? उन्होंने किस युद्ध में क्या २ शस्त्र कला दिखलाई ?

३—इस कविता से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

मुद्रक—[illegible] प्रिंटिंग प्रेस, [illegible], दरियागंज, देहली

शिक्षाएँ

कभी अभक्ष्य-भक्षण न करो।

सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, सच्चे गुरु के उपासक बनो।

कभी अपने मन में खोटी भावनायें न आने दो।

विषय-वासनाओं का त्याग करो।

स्वार्थ-बुद्धि को तजो।

अपने जीवन को सुन्दर, उदार, सुखी व शांत बनाओ

दूसरों को शान्ति के साथ जीने दो।

लौकिक तथा परमार्थिक कामों को करने के लिए अपने को वीर और साहसी बनाओ।

भले-बुरे को पहिचानना सीखो।

परिश्रम सफल जीवन की कुंजी है।

जो काम करो, हर्ष पूर्वक करो।

आपदाओं से घबराकर संक्लेशित मत हो, उनको जीतने का प्रयत्न करो।

वीर के उपासक हो वीर बनो।

आदर्श सेवक, सेवा से देवाधिदेव बन जाता है।

अपने आत्मबल तथा पौरुष को बढ़ाने का भरसक प्रयत्न करो।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् पब्लिशिङ्ग हाउस, दरीबा
देहली के प्रकाशन

छात्रोपयोगी पुस्तकें

क्रम सं० पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
धर्म शिक्षावली प्र. भाग	श्री उग्रसेन जैन एम.ए.एल.एल.बी. वकील	।)
,, ,, द्वि० भाग	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	।-)
,, ,, तृ० भाग	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	।=)
,, ,, च० भाग	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	॥)
,, ,, पं० भाग	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,	॥=)
रत्न करण्ड श्रावका चार	श्री पन्नालाल जी	॥)
छः ढाला	ब्र० शीतल प्रसाद जी जैन	।≡)
जैन तीर्थ और उनकी यात्रा	बा० कामता प्रसादजी जैन	।॥)

अन्य पढ़ने योग्य पुस्तकें

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
जैन धर्म प्रकाश	ब्र० शीतल प्रसाद जी	१)
भगवान महावीर	बा० कामता प्रसादजी जैन	२)
जैन वीरांगनाएँ	,, ,, ,,	॥)
नित्य नियम पूजा भाषा	ब्र० शान्ति स्वभावी	।)
भाषा नित्य पूजन सार्थ	भुवनेन्द्र "विश्व"	।-)
दस्साओं का पूजनाधिकार	पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ	=)
मद्रास मैसूर प्रांतके प्राचीन जैन स्मारक	ब्र० शीतलप्रसादजी	१=)
बाल चरितावली	बा० कामताप्रसादजी जैन	=)
वीर पाठावली	,, ,, ,,	१=)
विशाल जैन संघ	,, ,, ,,	।-)
आत्मिक मनोविज्ञान	श्री चम्पतरायजी जैन	॥)
भूल में भूल	पं० परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ	॥)
मोक्षशास्त्र भक्तामर	श्री मोहनलालजी शास्त्री	।)
जैन धर्म सिद्धान्त	राधास्वामी महर्षि	।।)